इष्टोपदेश आचार्य पूज्यपाद

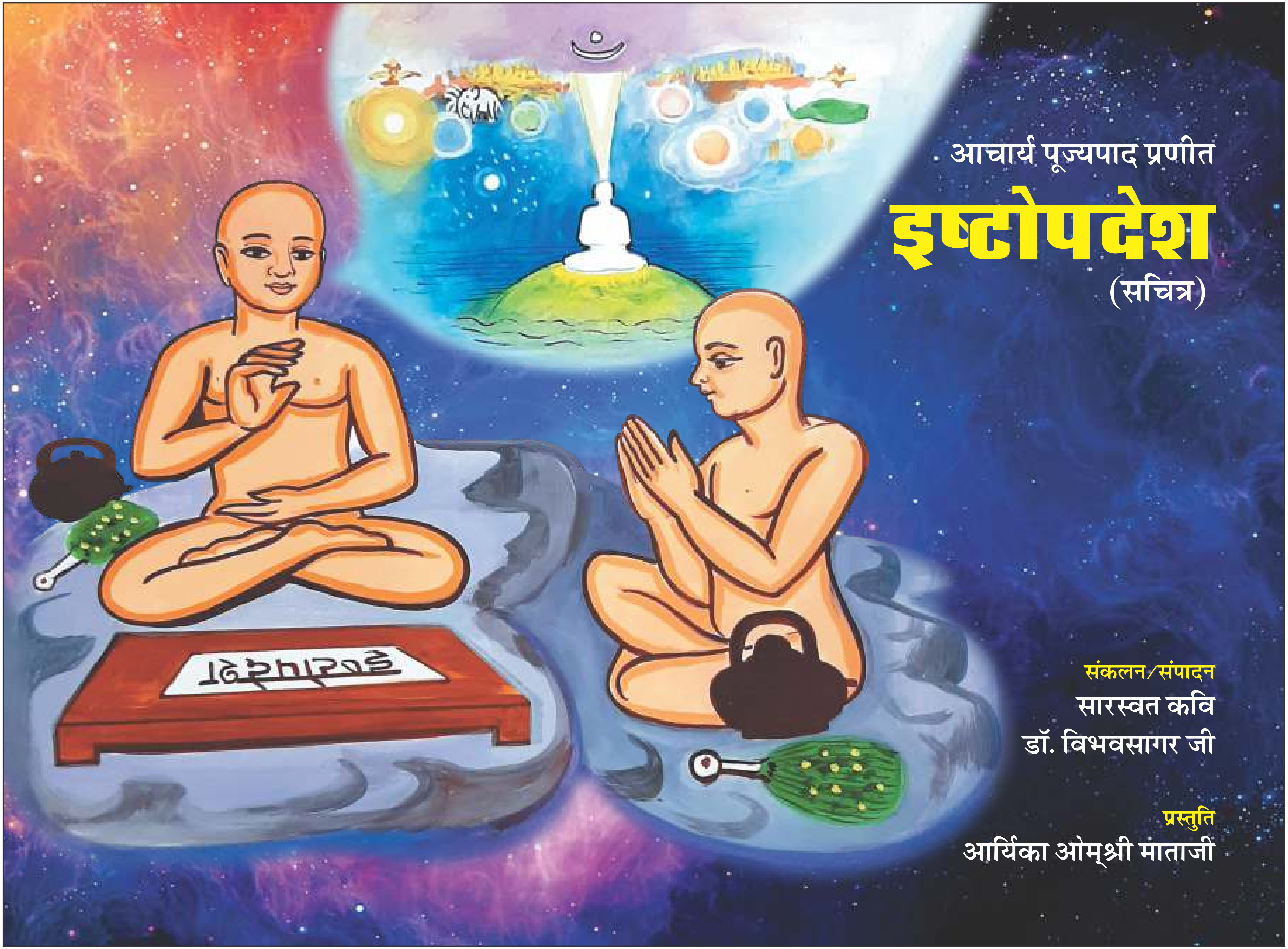

आचार्य पूज्यपाद प्रणीत

इष्टोपदेश

(सचित्र)

संकलन/संपादन

सारस्वत कवि

डॉ. विभवसागर जी

प्रस्तुति

आर्यिका ओम्श्री माताजी

आर्यिका रत्न ओम्श्री माताजी की छवियाँ

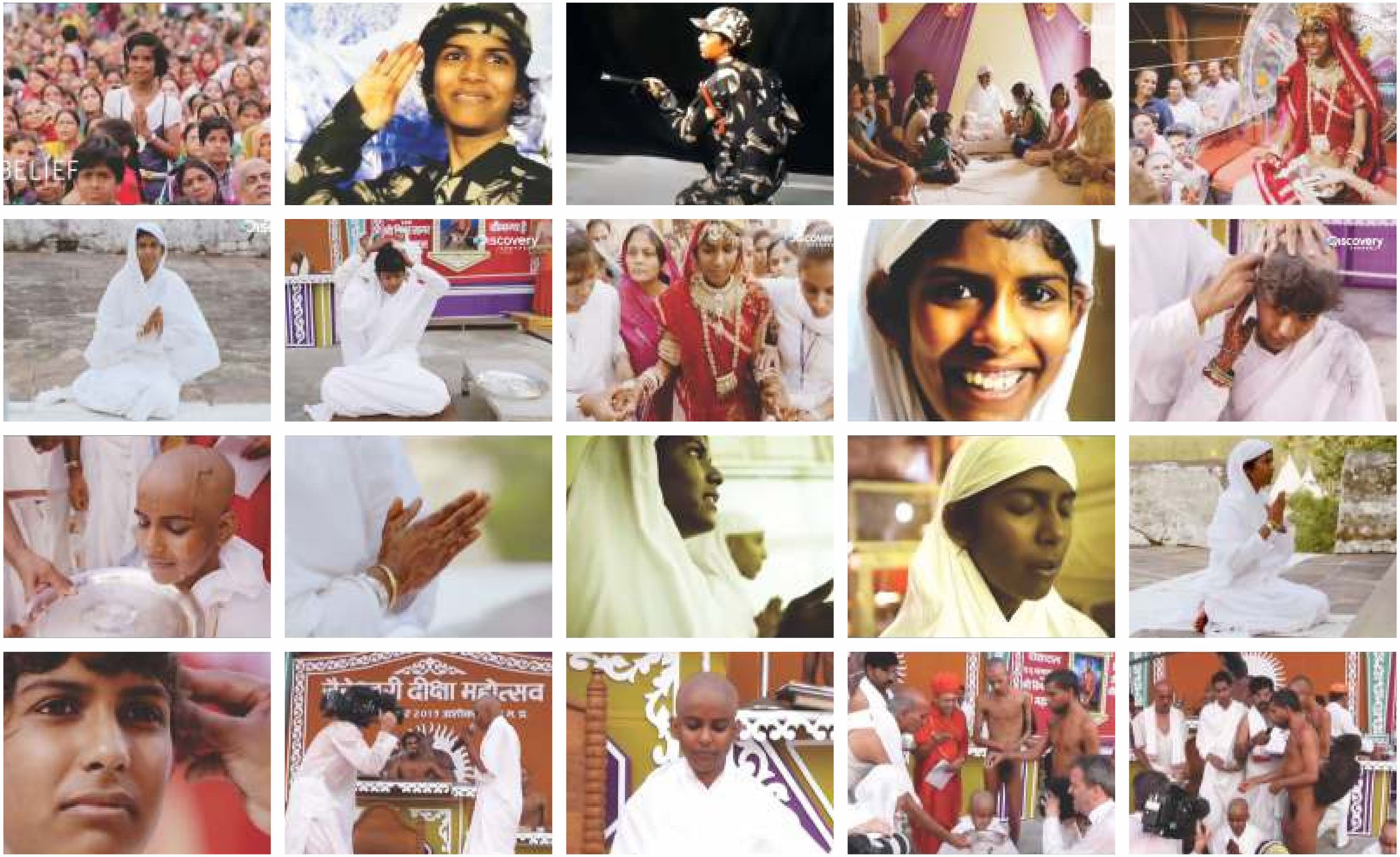

आचार्य श्री विभव सागर जी महाराज की प्रेरणादायी छवियाँ

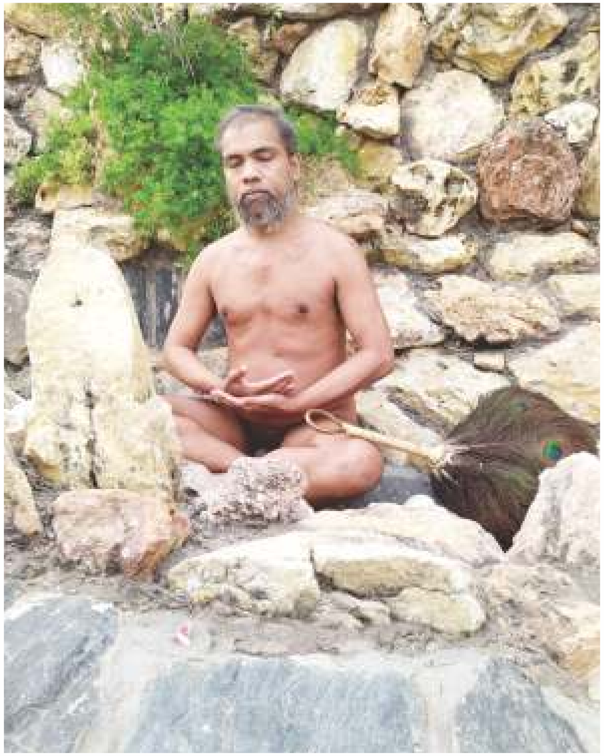

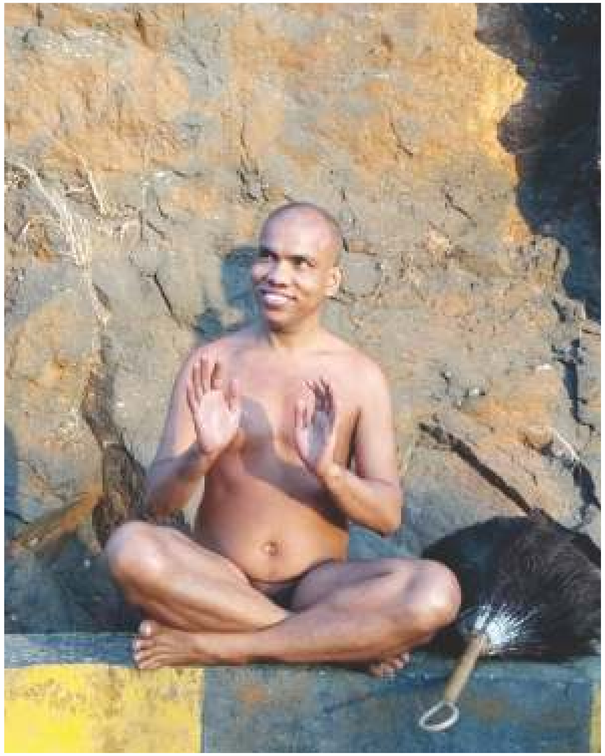

परम पूज्य
गणाचार्य
श्री 108
विरागसागर जी
महाराज

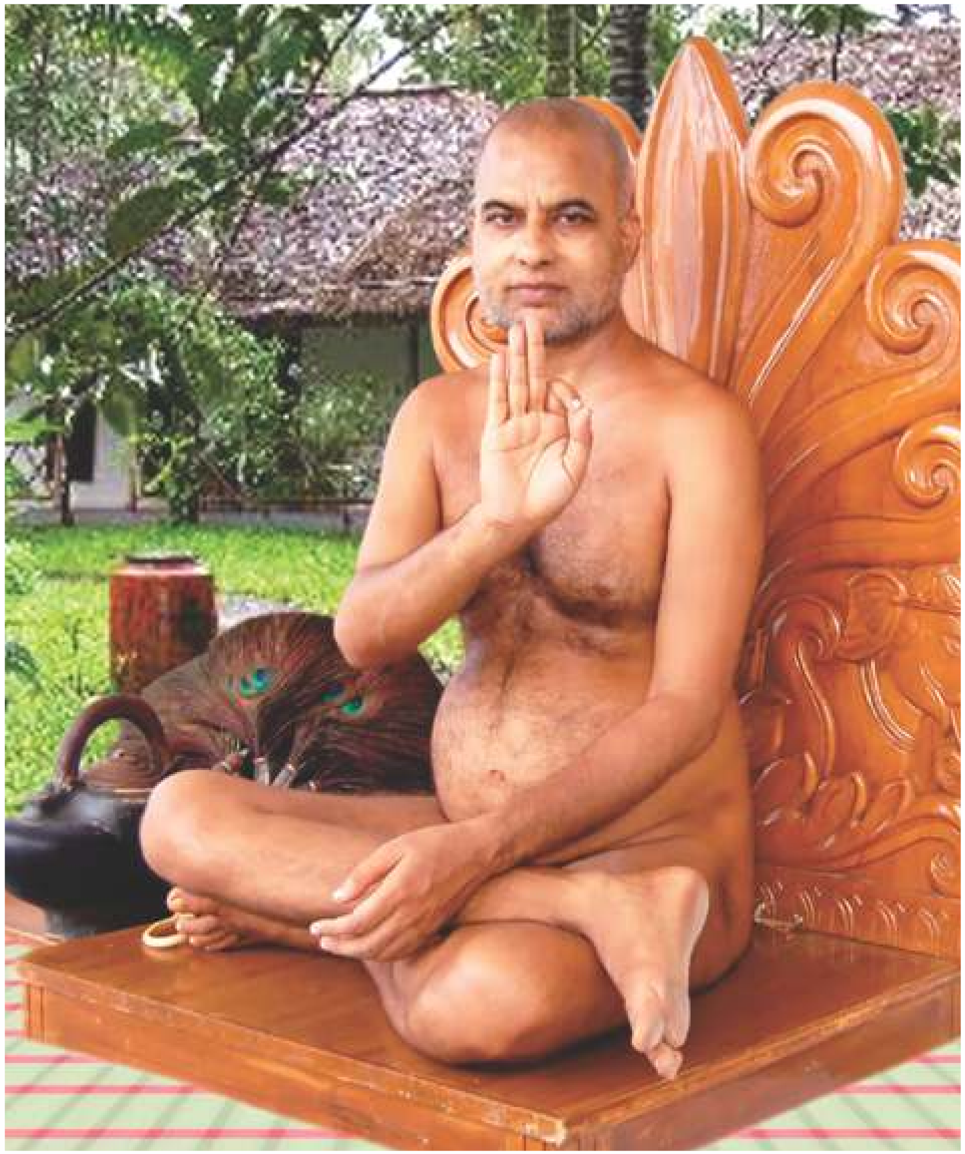

सारस्वत कवि
श्रमणाचार्य
डॉ. विभवसागर
मुनिराज

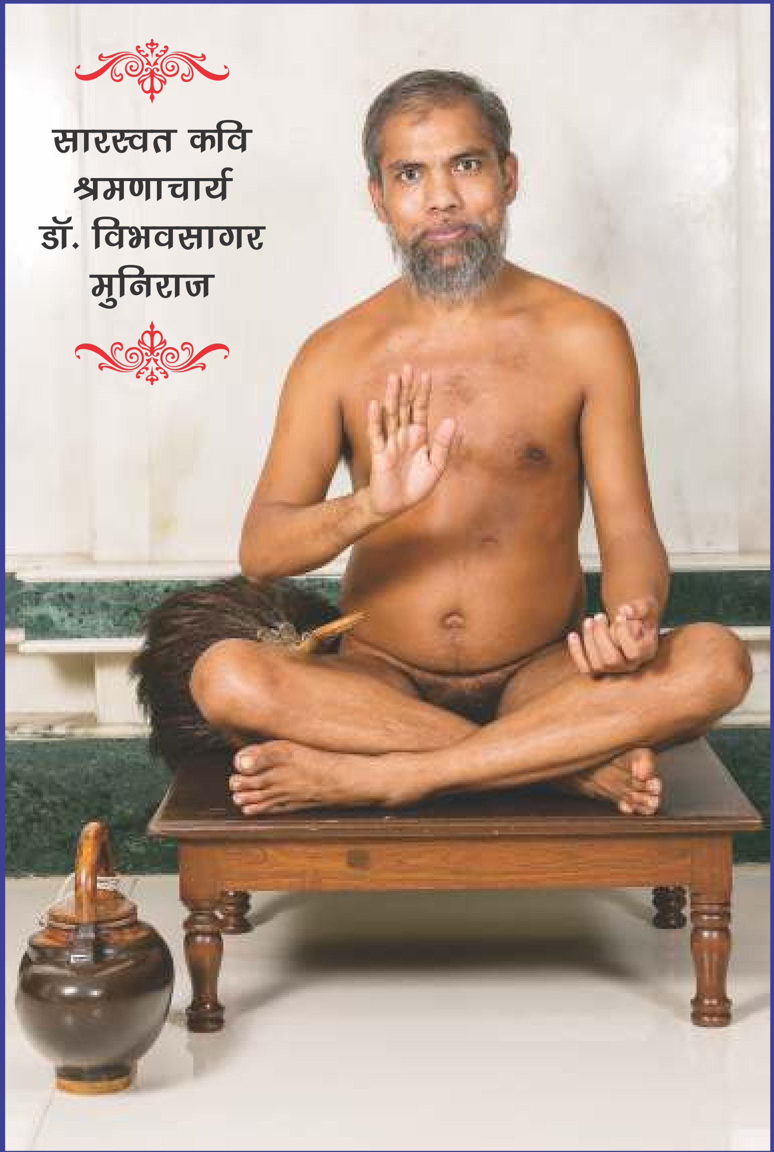

The Open International University for Complementary Medicines

(Established as per 1962 World Health Organisation Alma Ata Declaration and accorded international recognition to make Alternative Medicines popular and established under the authority of Medicina Alternativa International and recognised as a University by the Authority of His Excellency The President of The Democratic Socialist Republic of Sri Lanka, by Document Ref. No. 1963 of 25th March, 1988). In collaboration with the United Nations Peace University established by U. N. G. resolution No. 35/55/SXII/700 under recognition letter dated 15th August 1988; which is ratified by the Government of the Socialist Republic of Sri Lanka on 18th August 1981 and by India on 3rd December 1981 by becoming signatories of the International Agreement for the establishment of the University for Peace and Charter of the University for Peace, U. N.

CHARTER OF

MEDICINA ALTERNATIVA

(ALMA ATA 1962)

IN AFFILIATION WITH THE ZOROASTRIAN COLLEGE

Conducted under the auspices of the

ALL INDIA SHAH BEHRAM BAUG SOCIETY
(For Scientific & Educational Research)

AN NGO IN SPECIAL CONSULTATIVE STATUS WITH THE UNITED NATIONS ECONOMIC AND SOCIAL COUNCIL

The Senate and the Board of Governors hereby confer on

Acharya Vibhav Sagarji Maharaj Saheb

who has fulfilled the qualifying requirements, the degree of

Doctor of Philosophy (HONORIS CAUSA)

with all the rights, honours and privileges pertaining to this degree. In testimony whereof, we have subscribed our names and caused the seals of the University to be herein affixed

Given at Colombo on the 8th day of June 2019.

S Goonesinghe
For O.I.U.C.M. Senate

Mehr K. Mody
President, Zoroastrian College

For Vice Chancellor, O.I.U.C.M.

Vice President/Centre Head

Registered No. 2019/J-015

Holder's Signature

The abovenamed is hereby authorised to use the suffix Ph.D after his/her name.

इष्टोपदेश

आचार्य पूज्यपाद

अनुक्रमणिका

विवरण	पेज नं.
शुभाशीर्वाद	III
इष्टोपदेश	IV
समर्पण	V
प्रस्तावना	VI-VIII
श्लोक :–	
1. मंगलाचरण	3
2. निमित्तोपादान से सिद्धि	5
3. व्रतों की सार्थकता	7
4. शिवप्रद भावों से स्वर्ग सहज	9
5. स्वर्ग सुख का कथन	11
6. इन्द्रिय सुख–दुःख भ्रान्ति मात्र	13
7. मोह से ढका ज्ञान स्वरूप नहीं जानता	15
8. मोही जीव पर पदार्थ को अपना मानता	17
9. संसारी का परिवार कैसा?	19
10. अहितकर के प्रति क्रोध व्यर्थ	21
11. संसार में जीव किस तरह घूमता है	23
12. कोई न कोई विपत्ति सदा उपस्थित	25
13. धन दुःखदायक	27
14. संसारी प्राणी दूसरों का दुःख देखता है	29
15. लोभी को धन इष्ट है	31
16. त्याग के लिए संग्रह अनुचित	33
17. भोग कष्टदायक	35
18. अपवित्र शरीर की चाह व्यर्थ	37
19. उपकारक कौन? अपकारक कौन?	39
20. विवेकी किसमें आदर करे?	41
21. आत्मा का स्वरूप	43
22. आत्म ध्यान करने का उपाय	45
23. जो है उसी का दान	47

विवरण	पेज नं.
24. आत्म–ध्यान का फल	49
25. एकत्व में सम्बन्ध नहीं	51
26. बन्ध और मोक्ष का कारण	53
27. निर्ममता की सिद्धि योग्य विचार	55
28. सम्बन्धों को त्यागने की प्रेरणा	57
29. पौद्गलिक परिणति मेरी नहीं	59
30. ज्ञानी की अनासक्त बुद्धि	61
31. सभी अपना प्रभाव बढ़ाते हैं	63
32. आत्मोपकारी बनने का उपदेश	65
33. भेद विज्ञान का उपाय और फल	67
34. निजात्मा ही गुरु है	69
35. निमित्त सहायक मात्र है	71
36. निजात्म चिन्तन कौन कैसे करे?	73
37. आत्म संवित्ति की पहिचान	75
38. आत्म संवेदन की पहिचान	77
39. अनुभूति बढ़ने पर विचार परिणति	79
40. योगी की निर्जन प्रियता	81
41. स्परूप निष्ठ योगी की विशेषता	83
42. योगी की निर्विकल्प दशा	85
43. जो जहाँ रह जाता, वहाँ रम जाता	87
44. साम्यभावी योगी कर्मों से छूटता है	89
45. सुख–दुःख के आधार?	91
46. पर के अनुराग का फल	93
47. स्वरूप निष्ठता	95
48. आनंद का कार्य	97
49. मुमुक्षु क्या करे?	99
50. तत्त्व का सार	101
51. इष्टोपदेश शास्त्र अध्ययन का फल	103

इष्टोपदेश

शुभाशीर्वाद

प्रस्तुत शास्त्र इष्टोपदेश जी श्री दिगम्बर जैनाचार्य पूज्यपाद देव की अध्यात्मप्रधान प्रसिद्ध कृति है।

पाँचवी शताब्दी में रचित यह कृति अपनी समीचीनता के कारण तब से अब तक पाठकों तथा उपदेशकों को कण्ठ का अमृत बना हुई, परम आदर को प्राप्त है। जिस प्रकार देवों के इच्छा होते ही कण्ठ से अमृत झरता है वैसे ही उपदेशकों एवं उपासकों के मन में जिज्ञासा होते ही इष्टोपदेश का अमृत झरता है।

हमारी मंत्र पुत्री आर्यिका रत्न शिष्या ओम् श्री माता जी ने सचित्र, सार्थ प्रकाशन का भाव संजोया। प्रबल पुण्योदय से यह कार्य पूर्ण हुआ।

माताजी की पावन प्रेरणा से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा उनके भाव प्रधान इस कार्य तथा अग्रिम पवित्र कार्यों के लिए हमारा शुभाशीर्वाद

आचार्य विभवसागर
11.12.2019 भीण्डर

इष्टोपदेश

संकलन/संपादन

डॉ. आचार्य विभवसागर

कृति	-	इष्टोपदेश
कृतिकार	-	आचार्य पूज्यपाद जी
शुभाशीष	-	श्रमणाचार्य विराग सागर जी
प्रस्तुति	-	मंत्रपुत्री आर्यिका रत्न ओम् श्री माताजी
मुद्रक	-	प्रिन्ट 'औ' लैण्ड, जयपुर 9829205270
चित्रकार	-	अरविन्द आचार्य, इन्दौर (म.प्र.)
संस्करण	-	प्रथम, वर्ष 2020
पावन प्रसंग	-	पावन वर्षायोग 2019, रामगढ़ (राज.)
विमोचन प्रसंग	-	बाल ब्र. मंजू दीदी की दीक्षा के उपलक्ष्य में 21.02.2020 उदयपुर, राजस्थान
मूल्य	-	स्वाध्याय
प्रकाशक	-	श्रमण श्रुत सेवा संस्थान, जयपुर
प्राप्ति स्थल	-	सौरभ जैन, जयपुर, मो. 9829178749
	-	टी.के. वेद, इन्दौर मो. 9425154777
	-	प्रतिपाल टोंग्या, इन्दौर मो. 9302106984
	-	सन्मति जैन, सागर मो. 9425462997
		सुभाष जैन, अशोक नगर, मो. 9425760468

समर्पण

– मंत्र पुत्री ओम् श्री

जबसे मैंने यह शास्त्र
गुरुमुख से पढ़ा
तभी से मेरे मन में प्रबल भावना जगी
मैं इस ग्रन्थ को
सचित्र, सार्थ, मनोहर, समीचीन रूप में
सुंदर, समुन्नत शैलि में
प्रकाशित कराऊँ तथा रचयिता -
पूज्यपाद ऋषि के प्रति आदराञ्जलि
अर्पित कर श्री गुरुवर को समर्पित करूँ।

मेरे दीक्षा-शिक्षा गुरुवर श्री
आचार्य विभव सागर जी मुनिराज ने
अपने चिन्तन एवं मार्गदर्शन में
चित्रकार अरविंद आचार्य इन्दौर द्वारा
इष्टोपदेश ग्रन्थ के सुन्दर चित्र तैयार कराये।
फल स्वरूप मेरी भावना
आज सफल हो रही
मैं यह कृति आचार्य देवता पूज्यपाद
को स्मरण कर श्री गुरूणां गुरु गणाचार्य श्री
विराग सागर जी के श्रुतहस्त करकमलों
में अर्पण कर सौभाग्यशाली हूँ।

प्रस्तावना

आचार्य विभव सागर

लक्षणाचार्य, आध्यात्मिक महर्षि, वैयाकरण, आयुर्वेदाचार्य श्री पूज्यपाद ऋषि की आध्यात्मिक चिंतन एवं जीवन शैली से प्रकट तथा उनकी ही तपोपूत लेखनी से लिखित यह इष्टोपदेश शास्त्र है।

तीर्थंकर तुल्य उपकारी आचार्य देवता पूज्यपाद स्वामी ने अपने साधनाकाल में अनुभूत अनुभवों, प्रसंगों, संस्मरणों को भव्य जीव हिताय सहज, सरल, सुबोधगम्य, गेय-प्रेय उदाहरण शैली में अनुष्टुप छन्द में रचना की।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के अध्यात्म रहस्यों का हृदयंगम कर अध्यात्म का पवित्र अमृत इस शास्त्र में लबालब भरा हुआ है।

आत्मकला विशारद! स्वानुभूति रसिक, स्वरूपानुसंधान कर्त्ता! निज चैतन्य स्वरूपावलोकी! स्वपर भेद विज्ञानी! पूज्यपाद देव ने प्राणीमात्र पर यह परम उपकार किया। उनके तीर्थपूत पाद पद्मों में हम त्रय भक्ति पूर्वक नमोस्तु निवेदन कर कृतज्ञता सहित उनकी भाव पूजा में यह शास्त्र प्रस्तुत कर अहोभाग्य मानते हैं।

तीन लोक के सभी जीवोंको सुख पाना इष्ट है तथा दुःख अनिष्ट है। सभी जीव सुख चाहते हैं और दुःख से डरते हैं। आचार्य देव ने आत्मा को प्रिय, सुखदायक उपदेश इस ग्रन्थ में दिया है अतः ग्रन्थ का नाम 'इष्टोपदेश" सार्थक है।

जिस प्रकार बीज में वृक्ष, तिल में तेल, पाषाण में प्रतिमा, दूध में घी, ईन्धन में आग रूप परिणमन करने की शक्ति विद्यमान है यदि उस शक्ति को अभिव्यक्ति कराने वाले सहायक मिल जायें, कला विशारद प्रयत्न करें तो बीज वृक्ष बन जाता, तिल में तेल प्रकट हो जाता, पाषाण में प्रतिमा प्रकट हो जाती, दूध से घी तैयार हो जाता वैसे ही आत्मा में परमात्म बनने की शक्ति है उस शक्ति को अभिव्यक्त करने के लिए शेर को इष्टोपदेश मिला वह महावीर भगवान बन गया। हाथी को उपदेश मिला वह भगवान पार्श्वनाथ बन गया। जो उपदेश इन जीवों को मिला वही उपदेश पूज्यपाद देव ने इष्टोपदेश में हमे दिया।

स्वपर भेद विज्ञान कारक यह उपदेश प्राणी मात्र के लिए कल्याणकारी है। समताभाव उत्पादक यह शास्त्र सर्व प्रकार उपादेय है।

प्रतिपाद्य विषय-

सर्वप्रथम कर्म के अभाव होने पर परमात्म स्वभाव प्रकट होता है यह कहकर यह सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकता यदि कर्मनाश करने की सम्यक् साधना करे तो। अनंतर स्वात्मोपलब्धि रूप सिद्धि के निमित्त और उपादान दोनों की अनिवार्यतः बताकर गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को मजबूत किया तथा व्यवहार और निश्चय दोनों नयों को पुष्ट किया।

ज्ञान मात्र कार्यकारी नहीं। ज्ञान के साथ सम्यक् आचरण परम अनिवार्य है यह विवेचन करते व्रतों का फल स्वर्ग एवं पापों का फल नरक बताया। रागद्वेष दोनों भाव अशुभ हैं, भव भ्रमणकारी हैं ऐसा कहकर राग द्वेष त्यागने का उपदेश भी दिया। आत्मा का स्वरूप, आत्म ध्यान करने के उपाय, आत्म ध्यान का फल, बन्ध और मोक्ष का कारण भेद विज्ञान का उपाय और फल, तथा योगी की निर्विकल्प दशा का वर्णन कर, मुमुक्षु का कर्त्तव्य दर्शाकर तत्त्व का सार बताया अन्त इष्टोपदेश स्वाध्याय का फल समता भाव की प्रतिफल है।

इस प्रकार यह ग्रन्थ पठनीय है। अध्यात्म को समझने का यह सबसे सरलतम, लघु ग्रन्थ है।

पुण्यार्जक

परिवार

वोरा शान्ति देवी- शंकरलाल जी

श्रीमती प्रेमलता-श्री बालूलाल जी, ज्योति - श्री सचिन जी, नम्रता-श्री रविन्द्र जी, पलक, हिमेश, सम्यक, पूर्व वोरा
सुशमा - भारतेन्द्र जी, रेशमा - रोहितजी (पुत्री-दामाद) निशी, हित, दक्ष, याना (भाणेज) रामगढ़ जिला डूंगरपुर

सरस्वती क्लॉथ स्टोर, रामगढ़ (कपड़ों के विक्रेता) मो. 9602610235
राजस्थान मेडिकल स्टोर, डूंगरपुर (दवाईयों के विक्रेता) मो. 9602610235

पुण्यार्जक

परिवार

वोरा मणी देवी- मोहनलाल जी जैन

वोरा दीपिका जैन - पवन कुमार जैन योवन जैन (सुपुत्र), चार्मी जैन (सुपुत्री)

वोरा सुलोचना देवी
मोतीलाल जी जैन

वोरा नारंगी देवी
उत्सवलाल जी जैन

वोरा सुनिता देवी
अनिल कुमार जी जैन

वोरा संतोष देवी
सुशील कुमार जी जैन

मैसर्स वोरा मोहनलाल मगनलाल जैन (सोने चांदी के विक्रेता), रामगढ़ त. आसपुर जिला डूंगरपुर (राजस्थान)
मो. 9001242453, 9001620975

सचित्र सार्थ

इष्टोपदेश

रचयिता

आचार्य पूज्यपाद

संकलन/संपादन

सारस्वत कवि डॉ. आचार्य विभवसागर

प्रस्तुति

मंत्रपुत्री आर्यिकारत्न ओम्श्री माताजी

चित्र

अरविन्द आचार्य, इन्दौर

इष्टोपदेश

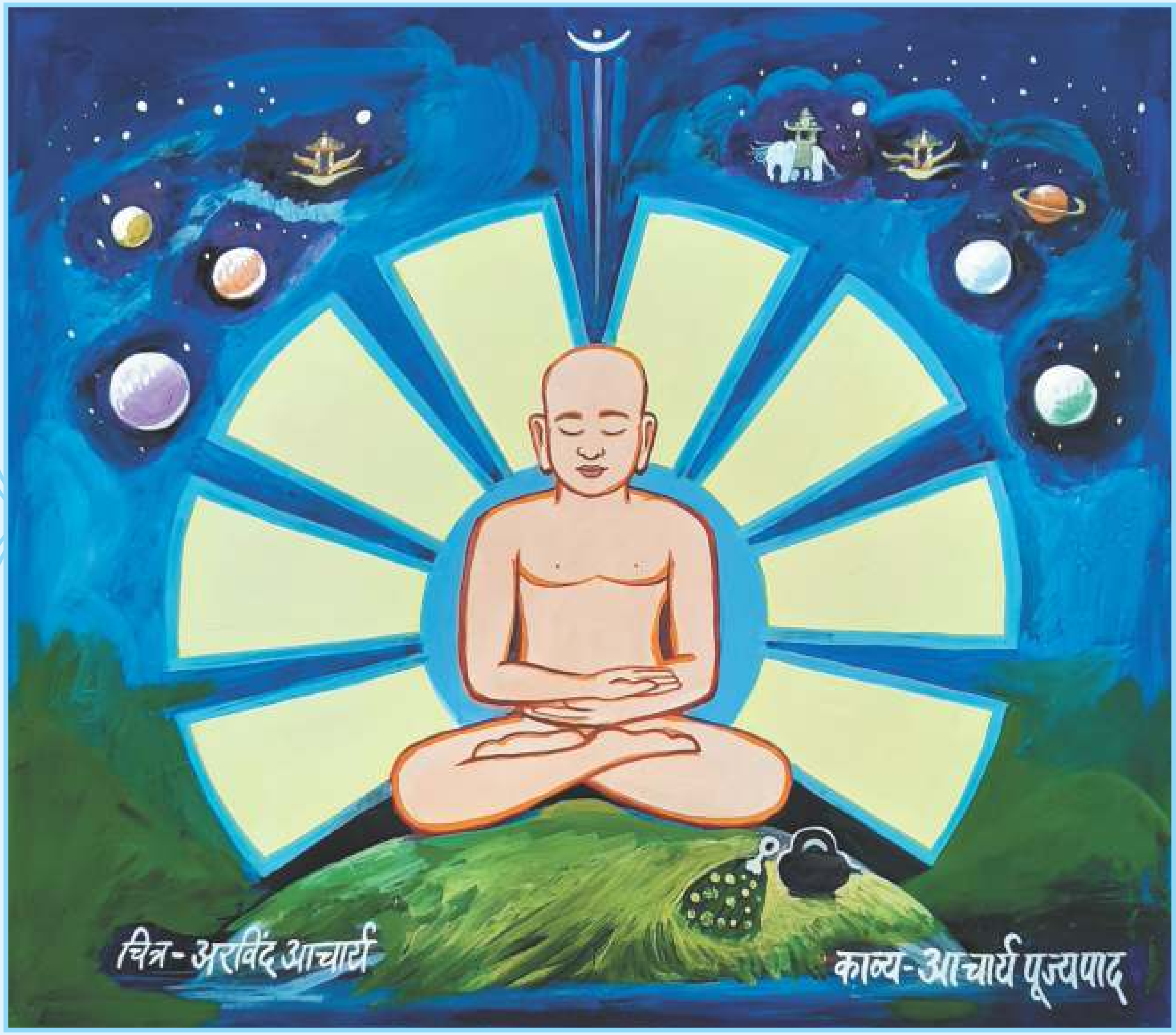
चित्र - अरविंद आचार्य
काव्य - आचार्य पूज्यपाद

मंगलाचरण

यस्य स्वयं स्वभावाप्ति, रभावे कृत्स्नकर्मण:।
तस्मै संज्ञानरूपाय, नमोऽस्तु परमात्मने।। 1।।

-: अन्वयार्थ :-

यस्य	जिनके
कृत्स्न	सम्पूर्ण
कर्मण:	कर्मों के
अभावे	अभाव हो जाने से
स्वयं	अपने आप
स्वभावाप्ति:	स्वभाव की प्राप्ति हो गयी है
तस्मै	उन
संज्ञानरूपाय	अनंतज्ञान स्वरूप
परमात्मने	परमात्मा के लिए
नम:	नमस्कार
अस्तु	हो।

-: अर्थ :-

जिनके सम्पूर्ण कर्म अभाव हो जाने से स्वत: ही स्वभाव की प्राप्ति हो गई है। उन अनंत ज्ञान (केवलज्ञान) स्वरूप परमात्मा के लिए नमस्कार हो।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

निमित्तोपादान से सिद्धि

योग्योपादानयोगेन, दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादि स्वादिसंपत्ता, वात्मनोऽप्यात्मता मता।। 2।।

-: अन्वयार्थ :-

योग्योपादान	योग्य उपादान के
योगेन	योग से
दृषदः	स्वर्ण पाषाण
स्वर्णता	स्वर्णपने को
मता	प्राप्त हुआ/माना गया है
द्रव्यादि स्वादि	स्वद्रव्य, क्षेत्र, आदि की
सम्पत्तौ	सम्पत्ति होने पर
आत्मनः	आत्मा
अपि	भी
आत्मता	परमात्मपने को प्राप्त हुआ
मता	माना गया है।

-: अर्थ :-

योग्य उपादान के योग से स्वर्ण पाषाण स्वर्णपने को प्राप्त हुआ माना जाता है, उसी प्रकार स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्राप्ति होने से आत्मा भी परमात्मपने को प्राप्त हुआ माना गया है।

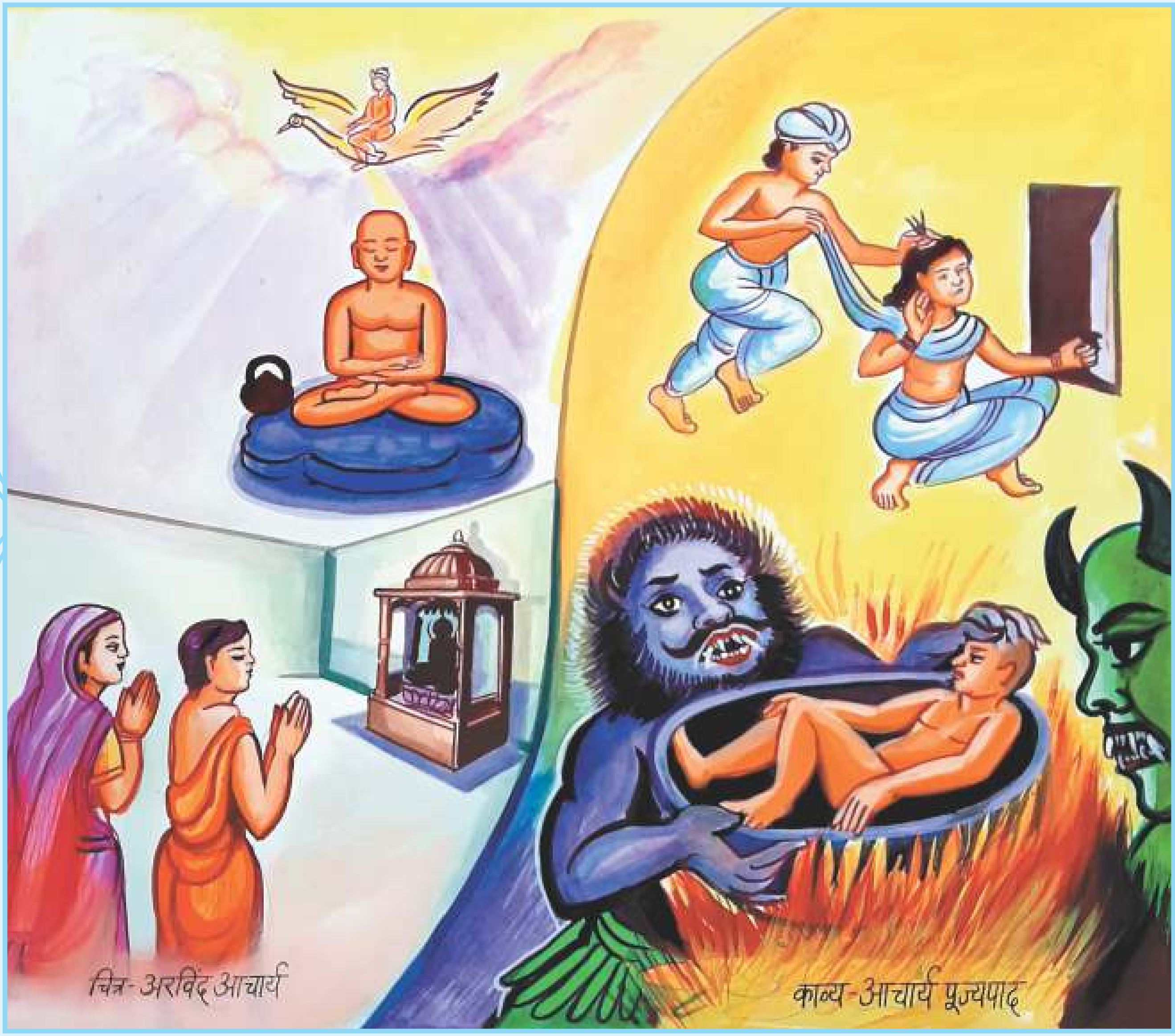
चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

व्रतों की सार्थकता

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत नारकम्।
छायातपस्थयोर्भेदः, प्रतिपालयतोर्महान्।। 3।।

-: अन्वयार्थ :-

व्रतैः	व्रतों के द्वारा
दैवं पदं	देवपद प्राप्त करना
वरम्	श्रेष्ठ है
अव्रतैः	अव्रतों से
नारकं	नरक में उत्पन्न होना
वत	ओह !
वरं न	श्रेष्ठ नहीं है
छाया तपस्थयोः	छाया तथा धूप में बैठने वाले पुरुषों के समान
प्रतिपालयतोः	व्रत और पापाचरण के प्रतिपालन में
महान्	बहुत बड़ा
भेदः	अन्तर है।

-: अर्थ :-

व्रत से देव पद पाना श्रेष्ठ है, अव्रत से नरक में उत्पन्न होना हाय (खेद वाचक शब्द) श्रेष्ठ नहीं है। छाया और धूप में बैठने वाले पुरुषों के समान व्रत और पापाचरण के प्रतिपालन में बहुत बड़ा अन्तर है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद
4

शिवप्रद भावों से स्वर्ग सहज ही

यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद् दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिः, क्रोशार्धे किं स सीदति?।। 4।।

-: अन्वयार्थ :-

यत्र भावः	आत्मा का जो भाव
शिवं दत्ते	मोक्ष प्रदान करता है उससे
द्यौः	स्वर्ग की प्राप्ति
कियद्दूरवर्तिनी	कितनी दूर हो सकती है ?
यः गव्यूतिः	जैसे जो मनुष्य दो कोश तक
आशु नयति	भार को शीघ्र ले जाता है।
सः	वह
क्रोशार्धे	आधा कोश ले जाने में
किं सीदति	क्या दु:खी हो सकता है? अर्थात् नहीं।

-: अर्थ :-

जो (आत्मा के) भाव मोक्ष को प्रदान करते हैं तो उन भावों द्वारा स्वर्ग पाना कितनी दूर है। जो (व्यक्ति कोई वस्तु) दो कोस तक शीघ्र ले जाता है वह आधा कोश ले चलने में क्या दु:खी होता है? अर्थात् नहीं होता है।

चित्र - अरविंद आचार्य
काव्य - आचार्य पूज्यपाद

स्वर्ग सुख का कथन

हृषीकजमनातङ्कं, दीर्घकालोपलालितम्।
नाके नाकौकसां सौख्यं, नाके नाकौकसामिव।। 5।।

-: अन्वयार्थ :-

नाके	स्वर्ग में
नाकौकसाम्	देवों का
हृषीकजं	इन्द्रियजन्य
सौख्यं	सुख
अनातङ्कं	बाधारहित और
दीर्घकाल	दीर्घकाल तक
उपलालिताम्	सेव्य तथा
नाकौकसाम्	स्वर्ग में रहने वाले देवों के समान ही
भवति	होता है।

-: अर्थ :-

स्वर्ग में देवों को पाँचों इन्द्रियों से उत्पन्न सुख निश्चिंत (विघ्न से रहित) दीर्घ काल तक प्राप्त हुआ सुख स्वर्ग के देवों की तरह होता है।

चित्र - अरविंद आचार्य

इन्द्रिय सुख-दुःख भ्रान्ति मात्र

वासनामात्रमेवैतत्, सुखं-दुःखं च देहिनाम्।
तथाह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि।। 6।।

-: अन्वयार्थ :-

देहिनाम्	संसारी जीवों के
एतत् सुखं	ये इन्द्रिय जन्य सुख
च	और
दुःखं	दुःख
वासना मात्रं एव	भ्रम (कल्पना) मात्र हैं
तथा हि	इसलिए
एते भोगाः	ये इन्द्रियों के भोग
आपदि	आपत्ति के समय में
रोगाः इव	रोगों की तरह
उद्वेजयन्ति	व्याकुलता उत्पन्न करते हैं।

-: अर्थ :-

संसारी प्राणियों के यह इन्द्रिय सुख और दुःख कल्पना मात्र ही हैं, उसी प्रकार ये (यह) भोग आपत्ति के समय रोग के समान दुःख को उत्पन्न (व्याकुल) करते हैं।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य - आचार्य पूज्यपाद

मोह से ढका ज्ञान स्वरूप नहीं जानता

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां, यथा मदनकोद्रवैः।। 7।।

-: अन्वयार्थ :-

मोहेन	मोह से
संवृतं ज्ञानं	ढका हुआ ज्ञान
स्वभावं	आत्म स्वभाव को
न हि लभते	नहीं प्राप्त कर पाता है
यथा	जैसे
मदन कोद्रवैः	नशीले कोदों के खा लेने से
मत्तः पुमान्	मूर्च्छित या बेहोश मनुष्य
पदार्थानां	पदार्थों को ठीक तरह से नहीं जान पाता।

-: अर्थ :-

मोह से आवृत ज्ञान निश्चय से स्वभाव को प्राप्त नहीं होता जैसे नशीले कोदों के खा लेने से प्रमत्त हुआ पुरुष पदार्थों को नहीं जान पाता।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

मोही जीव पर पदार्थ को अपना मानता

वपुर्गृहं धनं दाराः, पुत्राः मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते।। ८।।

-: अन्वयार्थ :-

वपुः गृहं	शरीर, गृह,
धनं दाराः	धन, स्त्रियाँ,
पुत्राः मित्राणि	पुत्र, मित्र और
शत्रवः	शत्रु
सर्वथा	सभी तरह से
अन्यस्वभावानि	आत्म स्वभाव से अन्य स्वभाव वाले हैं परन्तु
मूढः	मोही
अज्ञानी	प्राणी इन्हें
स्वानि प्रपद्यते	अपने समझता है।

-: अर्थ :-

शरीर, घर, धन, स्त्री, मित्र, शत्रु सब तरह से अन्य स्वभाव वाले हैं परंतु मूढ प्राणी (अज्ञानी) प्राणी उन्हें अपना मानता (समझता) है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

संसारी का परिवार कैसा?

दिग्देशेभ्यः खगाः एत्य, संवसन्ति नगे-नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे-प्रगे।। ९।।

-: अन्वयार्थ :-

दिग्देशेभ्यः	भिन्न-भिन्न दिशाओं व देशों से
खगाः	पक्षीगण
एत्य	आकर के
नगे-नगे	वृक्ष-वृक्ष पर
संवसंन्ति	ठहर जाते हैं, तथा
प्रगे-प्रगे	प्रातःकाल - प्रातःकाल
स्वस्वकार्यवशात्	अपने-अपने कार्य के वश से
देशे दिक्षु	भिन्न-भिन्न देश व दिशाओं में
यान्ति	उड़कर चले जाते हैं।

-: अर्थ :-

दिशा-विदिशाओं से पक्षी आकर वृक्ष-वृक्ष पर रात्रि में निवास करते हैं और प्रातः काल होते ही अपने-अपने कार्य के वश से दिशाओं में चले जाते हैं।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

अहितकर के प्रति क्रोध व्यर्थ

विराधकः कथं हन्त्रे, जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां, स्वयं दण्डेन पात्यते।। 10।।

-: अन्वयार्थ :-

विराधकः	अपकार करने वाला मनुष्य
हन्त्रे जनाय	मारने वाले मनुष्य के ऊपर
कथं परिकुप्यति	क्यों क्रोध करता है? देखो
त्र्यङ्गुलं	तीन अँगुल वाले (फावड़े आदि) के
पद्भ्यां	पैरों के द्वारा
पातयन्	गिराने वाला मनुष्य
स्वयं दण्डेन	स्वयं लकड़ी के बेंत द्वारा
पात्यते	गिरा दिया जाता है।

-: अर्थ :-

उपकार करने वाले, मारने वाले मनुष्य के प्रति क्यों क्रोध करता है? क्योंकि तीन अङ्गुल (फावड़े) आदि का भूमि पर (खोदने के लिए) गिरता हुआ मनुष्य पैरों से बेंत के द्वारा स्वयं गिराता (झुकाया) जाता है।

चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

संसार में जीव किस तरह घूमता है

रागद्वेषद्वयीदीर्घ - नेत्राकर्षणकर्मणा।
अज्ञानात् सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ।। 11।।

-: अन्वयार्थ :-

असौ	यह
जीवः	संसारी प्राणी
संसार अब्धौ	इस संसार-समुद्र में
अज्ञानात्	अज्ञान के कारण से
सुचिरं	अनादिकाल से
रागद्वेषद्वयी दीर्घ	राग-द्वेष रूपी दो लंबी
नेत्राकर्षण-कर्मणा	रस्सी के द्वारा कर्मों को ग्रहण करता हुआ
भ्रमति	घूम रहा है।

-: अर्थ :-

संसारी जीव राग-द्वेष रूपी दो लम्बी रस्सी के द्वारा कर्मों को ग्रहण करता है और अज्ञान से संसार समुद्र में चिरकाल तक भ्रमण करता है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य - आचार्य पूज्यपाद

कोई न कोई विपत्ति सदा उपस्थित

विपद्भवपदावर्ते, पदिके वातिवाह्यते।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः, प्रचुराः विपदः पुरः।। 12।।

-: अन्वयार्थ :-

भव-पदावर्ते	संसार रूपी पैर से चलने वाले घटीयंत्र में
पदिका इव	रहट के समान
यावत्	जब तक
विपद्	एक विपत्ति
अतिवाह्यते	समाप्त की जाती है
तावत्	तब तक
अन्यः प्रचुराः	दूसरी बहुत सी
विपदः	विपत्तियाँ
पुरः भवन्ति	सामने आ खड़ी हो जाती हैं।

-: अर्थ :-

संसार में पैर से चलने वाली घटीयंत्र (रहट) के समान जब तक एक विपत्ति समाप्त होती है, तब तक दूसरी बहुत रूप में (विपत्तियाँ) आगे खड़ी हो जाती हैं।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

धन दुःखदायक

दुरर्ज्येनासुरक्ष्येण, नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि, ज्वरवानिव सर्पिषा।। 13।।

-: अन्वयार्थ :-

दुरर्ज्येन	बड़ी कठिनाइयों से कमाये जाने वाले तथा
असुरक्ष्येण	सुरक्षित न रहने वाले
नश्वरेण	विनश्वर
धनादिना	धन पुत्रादिकों में
कः जनः	कौन मनुष्य
ज्वरवान् इव	ज्वर से सहित होने पर,
अपि	भी,
सर्पिषा	घी पीने के
इव	समान, अपने आपको,
स्वस्थं	स्वस्थ (सुखी),
मन्यो	मानता है।

-: अर्थ :-

बड़ी कठिनाई से अर्जन होने वाले, सुरक्षित न रहने वाले, नाशवान, धन, पुत्रादिकों में कौन पुरुष ज्वर से सहित होने पर भी घी पीने के समान अपने आपको स्वस्थ (सुखी) मानता है? अर्थात् कोई नहीं।

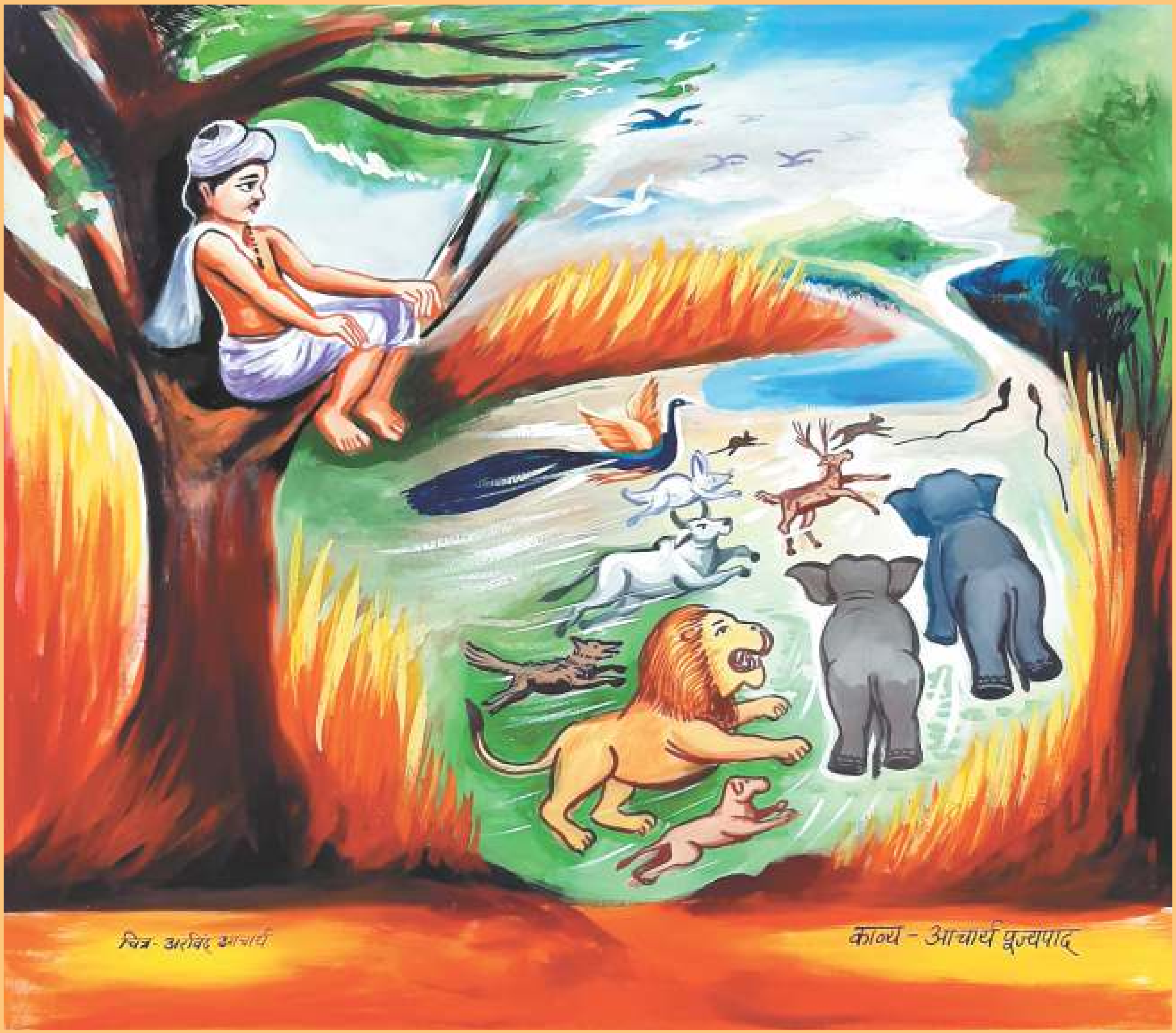
चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य - आचार्य पूज्यपाद

संसारी प्राणी दूसरों का दुःख देखता है

विपत्तिमात्मनो मूढः, परेषामिव नेक्षते।
दह्यमान मृगाकीर्ण, वनान्तरतरुस्थवत्।। 14।।

-: अन्वयार्थ :-

मृगाकीर्ण	मृग आदि जीवों से भरे तथा
दह्यमान	अग्नि से जलते हुए
वनान्तर	वन में
तरुस्थवत्	वृक्ष पर बैठे हुए मनुष्य के समान
मूढः	मूर्ख प्राणी
परेषां	दूसरे की
विपत्तिम् इव	विपत्ति के समान
आत्मनः	अपने ऊपर आई हुई विपत्ति को
न ईक्षते	नहीं देखता है।

-: अर्थ :-

फैली हुई अग्नि से जलते हुए मृग आदि जीवों के समूह से युक्त वन में किसी वृक्ष पर बैठे हुए मनुष्य की तरह मूर्ख जीव दूसरे की विपत्ति के समान अपनी विपत्ति को नहीं देखता है।

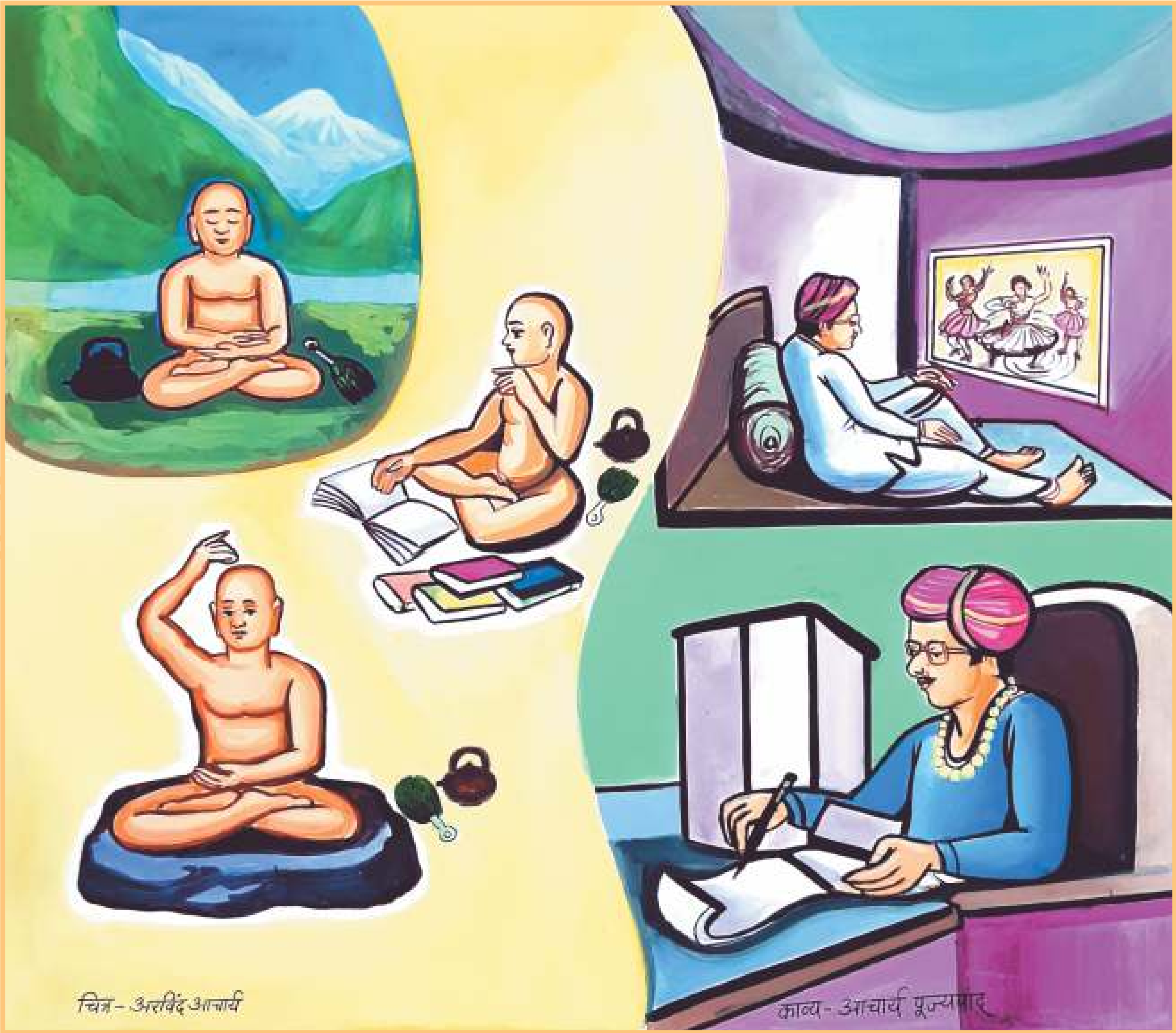
चित्र - अरविंद आचार्य
काव्य - आचार्य पूज्यपाद

लोभी को धन इष्ट है

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष, हेतुं कालस्य निर्गमम्।
वाञ्छतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम्।। 15।।

-: अन्वयार्थ :-

कालस्य निर्गमम्	समय का व्यतीत होना
आयु: क्षय	आयु के क्षय और
वृद्धि उत्कर्ष हेतुं	धन की वृद्धि का कारण है
वाञ्छतां धनिनां	धन चाहने वाले धनवान् पुरुषों को
जीवितात्	अपने जीवन से भी
सुतराम्	अधिक या अच्छी तरह से
धनं इष्टम्	धन इष्ट होता है।

-: अर्थ :-

काल के निकल जाने पर आयु के क्षय और धन की वृद्धि का कारण मानने वाले धनवान पुरुषों को अच्छी तरह से अपने जीवन से भी धन का पाना इष्ट है।

चित्र अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

त्याग के लिए संग्रह अनुचित

त्यागाय श्रेयसे वित्त, मवित्तः संचिनोति यः।
स्वशरीरं स पङ्केन, स्नास्यामीति विलिम्पति।। 16।।

-: अन्वयार्थ :-

यः अवित्त	जो निर्धन मनुष्य
त्यागाय	दान पुण्य करने के लिए
वित्तं सञ्चिनोति	धन को संग्रहित करना
श्रेयसे	श्रेष्ठ मानता है
सः	वह (मनुष्य)
स्नास्यामि	मैं स्नान करूँगा
इति	इस विचार से
स्वशरीरं	अपने शरीर को
पङ्केन विलिम्पति	कीचड़ में लिप्त करता है। जो कि उचित नहीं है।

-: अर्थ :-

जो धन से रहित गरीब त्याग करने के लिए धन का संचय करना श्रेष्ठ मानता है वह 'स्नान करूँगा' इस विचार से अपने शरीर को कीचड़ से लीपता है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

भोग कष्टदायक

आरम्भे तापकान् प्राप्ता, वतृप्तिप्रतिपादकान्।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामानं, कामं कः सेवते सुधीः।। 17।।

-: अन्वयार्थ :-

कामान्	विषय भोग
आरम्भे	प्रारम्भ में
तापकान्	सन्ताप देने वाले
प्राप्तौ	प्राप्त हो जाने पर
अतृप्ति	तृष्णा
प्रतिपादकान्	बढ़ाने वाले तथा
अन्ते	अन्त में
सुदुस्त्यजान्	बड़ी कठिनाई से छूटने योग्य
कामं	काम को
कः सुधीः	कौन बुद्धिमान पुरुष
सेवते	सेवन करता है ? अर्थात् इन विषयों को अज्ञानी रुचि पूर्वक भोगते हैं, ज्ञानी नहीं।

-: अर्थ :-

जो विषय भोग आरम्भ में ताप को प्राप्त कराते हैं एवं अतृप्त (तृष्णा) को बढ़ाने वाले हैं तथा अन्त में बहुत कठिनाई से छूटते हैं ऐसे काम को कौन बुद्धिमान पुरुष सेवन करेगा ? अर्थात् कोई नहीं करेगा।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

अपवित्र शरीर की चाह व्यर्थ

भवन्ति प्राप्य यत्सङ्ग, मशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः संततापायस्, तदर्थं प्रार्थना वृथा।। 18।।

-: अन्वयार्थ :-

यत्सङ्गम् प्राप्य	जिसका संयोग पाकर
शुचीनि अपि	पवित्र पदार्थ भी
अशुचीनि	अपवित्र
भवन्ति	हो जाते हैं
स कायः	ऐसा वह शरीर
सन्तत अपायः	सदा छुधादि दुःखों का कारण है अतः
तदर्थं	उसके लिए
प्रार्थना वृथा	भोगों की कामना करना व्यर्थ है।

-: अर्थ :-

जिसका संयोग प्राप्तकर पवित्र पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं और वह शरीर हमेशा विनाशीक है उसके लिए प्रार्थना (कामना) करना व्यर्थ है।

चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

उपकारक कौन? अपकारक कौन?

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्।। 19।।

-: अन्वयार्थ :-

यत् जीवस्य	जो कार्य या पदार्थ आत्मा का
उपकाराय	उपकार करने वाला है
तत् देहस्य	वह शरीर का
अपकारकम्	अपकार करने वाला है, तथा
यत्	जो
देहस्य उपकाराय	शरीर का उपकार करने वाला है
तत्	वह
जीवस्य अपकारकम्	आत्मा का अपकार करने वाला है।

-: अर्थ :-

जो पदार्थ जीव उपकार के लिए होता है, वह शरीर का अपकार करता है जो देह के उपकार के लिए होता है वह जीव का अपकार करता है।

चित्र- अरविंद आचार्य

विवेकी किसमें आदर करे?

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य, इतः पिण्याककखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये, क्वाद्रियन्तां विवेकिनः ।। 20 ।।

-: अन्वयार्थ :-

इतः दिव्य	यहाँ (एक तरफ) दिव्य
चिन्तामणिः	चिन्तामणि रत्न और
इतः	यहाँ (दूसरी तरफ)
पिण्याकखण्डकम्	खली का टुकड़ा है
चेत् उभे	ये दोनों यदि
ध्यानेन लभ्ये	ध्यान के द्वारा प्राप्त होते हैं तो
विवेकिनः	बुद्धिमान मनुष्य
क्व	किसमें
आद्रियन्तां	आदर करेगा ?

-: अर्थ :-

यहाँ दिव्य चिन्तामणि रत्न हैं और यहाँ खली का टुकड़ा (मिलता) है यदि दोनोंही ध्यान के द्वारा प्राप्त होते हैं तो विवेकी (बुद्धिमान) किसमें (कहाँ) आदर करेगा ? अर्थात् चिन्तामणि रत्न में ही आदर करेगा।

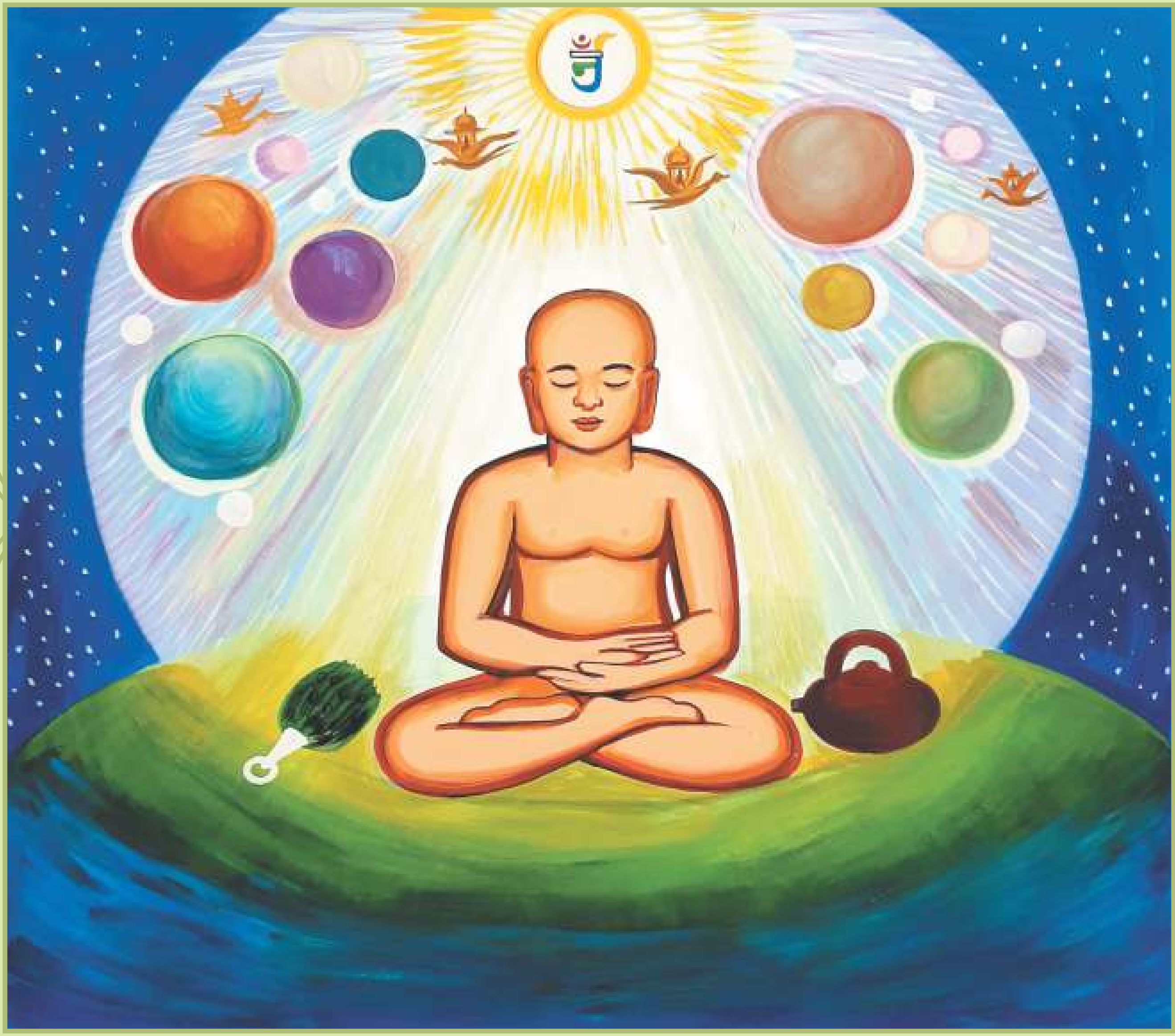

आत्मा का स्वरूप

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्, तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकनः।। 21।।

-: अन्वयार्थ :-

आत्मा	यह आत्मा
स्वसंवेदन	आत्म-अनुभव द्वारा
सुव्यक्तः	स्पष्ट प्रकट होता है (जाना जाता है)
तनुमात्रः	यह शरीर के बराबर है
निरत्ययः	अविनाशी है
अत्यन्त सौख्यवान्	अनन्त सुख वाली है तथा
लोकालोक	लोक और अलोक को
विलोकनः	जानने देखने वाला है।

-: अर्थ :-

आत्मा आत्म अनुभव द्वारा स्पष्ट प्रगट है, शरीर प्रमाण है, अविनाशी है, अनन्त सुख वाला है, लोक, अलोक को जानने देखने वाला है।

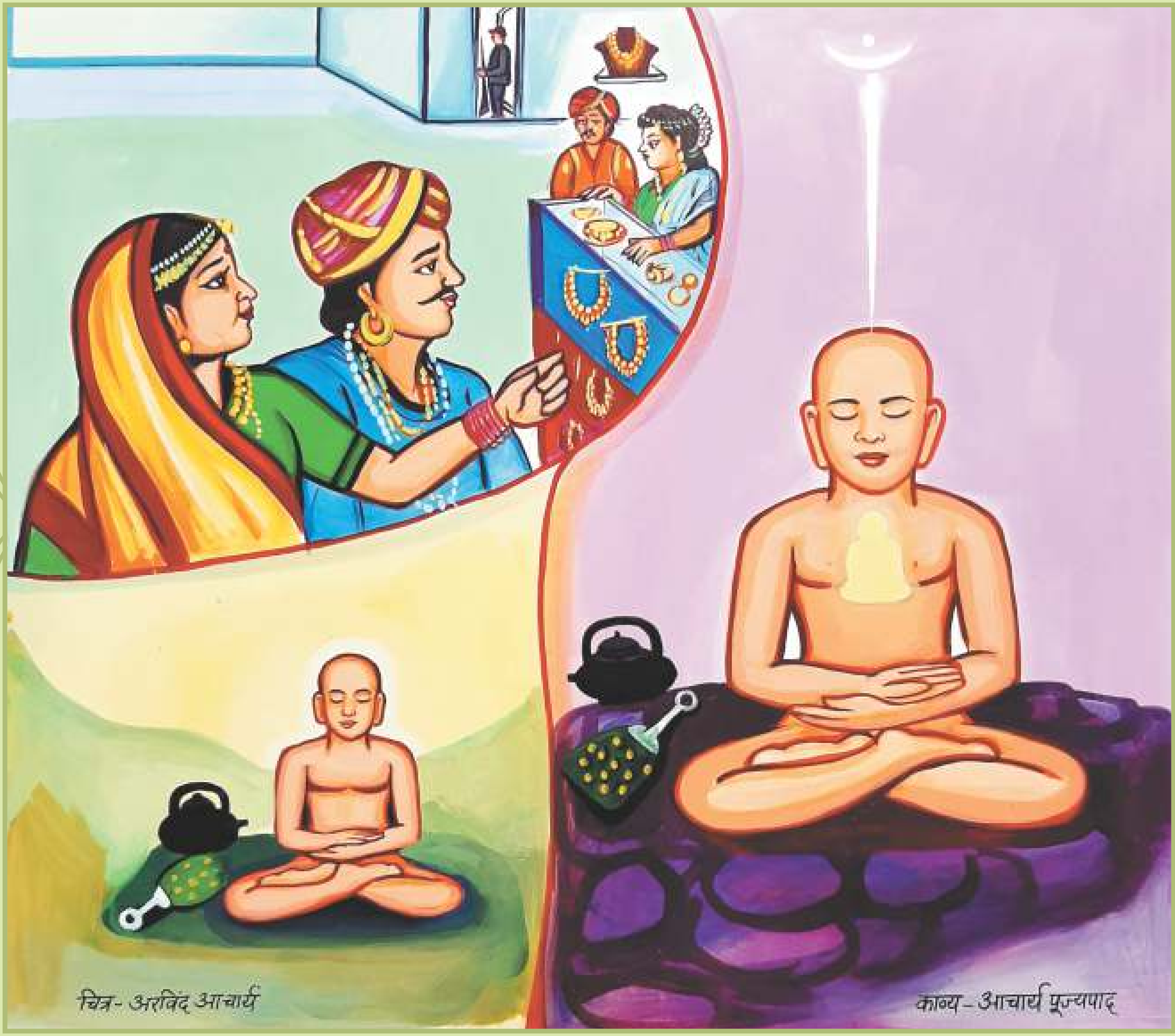
चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य - आचार्य पूज्यपाद

आत्म ध्यान करने का उपाय

संयम्य करणग्राम, मेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान् ध्याये, दात्मनैवात्मनि स्थितम्।। 22।।

-: अन्वयार्थ :-

आत्मवान्	आत्मा
करणग्रामं	इन्द्रिय समूह को
संयम्य	संयमित कर (विषयों को रोककर)
चेतसः	चित्त की
एकाग्रत्वेन	एकाग्रता से
आत्मनि	अपने आत्मा में
स्थितम्	स्थिर होकर
आत्मना एव	अपने आत्मा द्वारा ही
आत्मानं	अपने आत्मा का
ध्यायेत्	चिन्तन करे।

-: अर्थ :-

आत्मा इन्द्रियों के समूह को (बाहरी विषयों से) रोककर मन की एकाग्रता से अपनी आत्मा मे स्थिर होकर अपनी आत्मा द्वारा ही आत्मा का ध्यान करे।

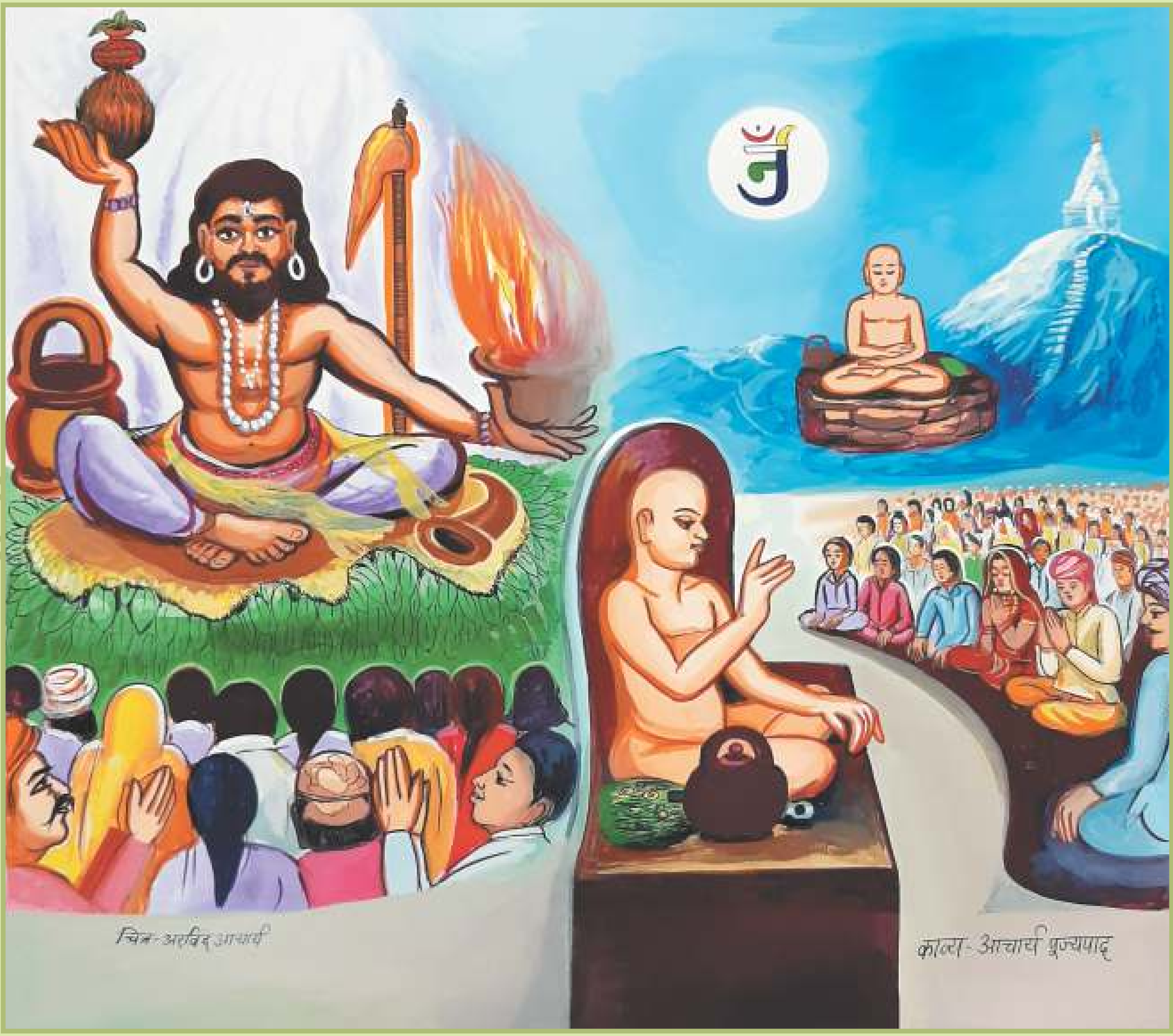
चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

जो है उसी का दान

अज्ञानोपास्ति-रज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः।। 23।।

-: अन्वयार्थ :-

अज्ञानोपास्तिः	अज्ञान भाव की उपासना (सेवा)
अज्ञानं	अज्ञान
ददाति	देती है
ज्ञानिसमाश्रयः	ज्ञान भाव की उपासना (आश्रय)
ज्ञानं	ज्ञान, (क्योंकि)
इदम् वचः	यह बात
सुप्रसिद्धम्	अच्छी तरह से प्रसिद्ध है कि
यस्य	जिसके पास
यत्तु अस्ति	जो होता है, निश्चय से वही
ददाति	देता है।

-: अर्थ :-

अज्ञान की उपासना से अज्ञान और ज्ञान स्वभाव का आश्रय लेने से ज्ञान मिलता है (क्योंकि) यह बात अच्छी से प्रसिद्ध है कि जिसके पास जो होता है, वह निश्चय से वही देता है।

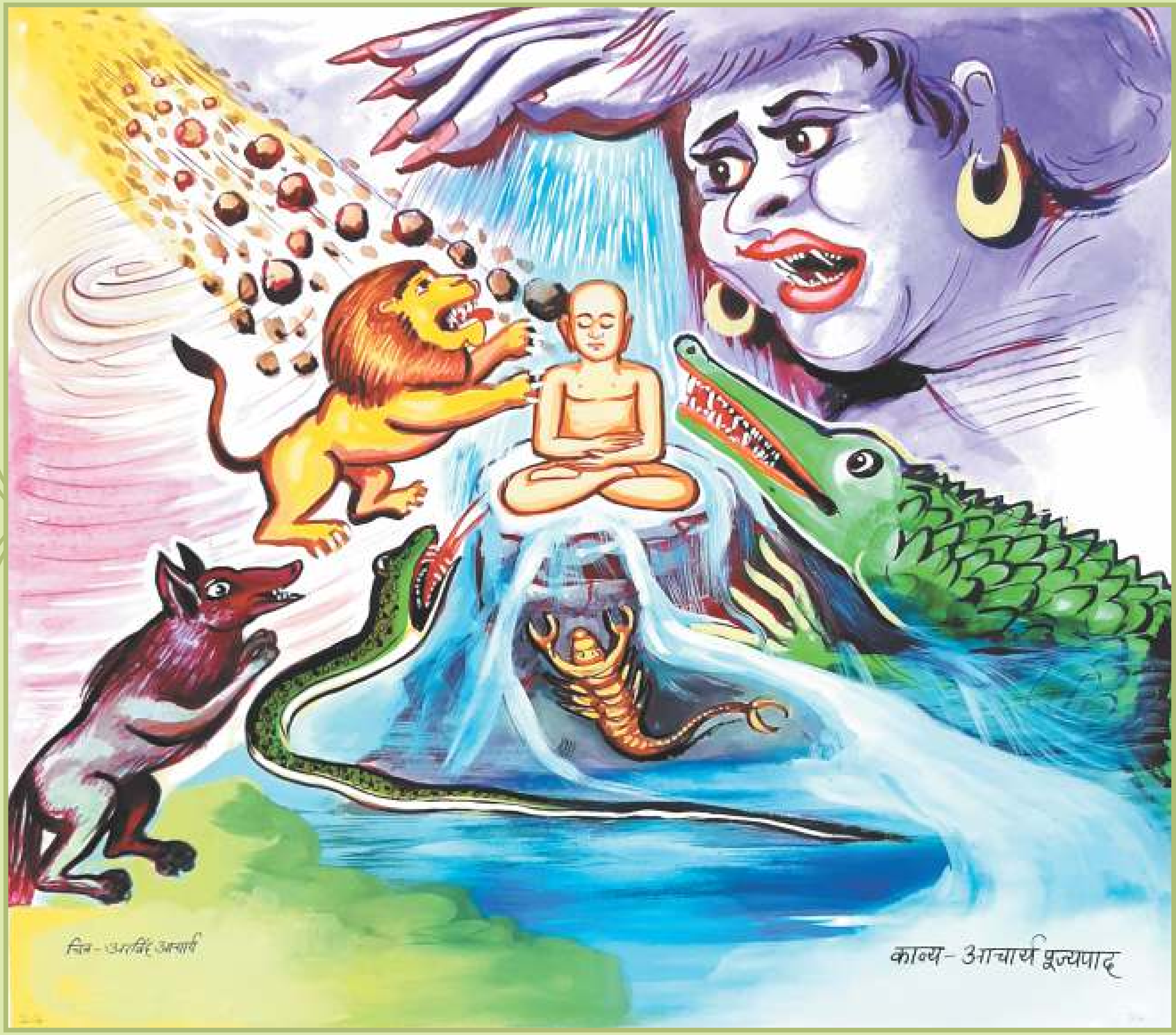
चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

आत्म-ध्यान का फल

परीषहाद्यविज्ञाना, दास्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्मयोगेन, कर्मणामाशु निर्जरा।। 24।।

-: अन्वयार्थ :-

अध्यात्मयोगेन	अध्यात्म योग से
परिषहादि	परीषह (भूख, प्यास) आदि का
अविज्ञानात्	अनुभव नहीं होता, जिससे
आस्रवस्य	आस्रव को
निरोधिनी	रोकने वाली
कर्मणाम्	कर्मों की
निर्जरा	निर्जरा
आशु जायते	शीघ्र होने लगती है।

-: अर्थ :-

अध्यात्म योग से परीषह आदि का अनुभव न होने के कारण आस्रव का निरोध होता है (इससे) शीघ्र ही कर्मों की निर्जरा होती है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

एकत्व में सम्बन्ध नहीं

कटस्य कर्त्ताहमिति, संबंधः स्याद् द्वयोर्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव, संबंधः कीदृशस्तदा।। 25।।

-: अन्वयार्थ :-

अहम्	मैं
कटस्य कर्त्ता	चटाई का कर्ता हूँ
इति सम्बन्धः	इस प्रकार कर्ता-कर्म सम्बन्ध
द्वयोर्द्वयोः	भिन्न-भिन्न दो पदार्थों में
स्यात्	होता है, परन्तु
यदा ध्यानं ध्येयं	जब ध्यान ध्येय
आत्म एव	आत्मा ही हो
तदा	तब
कीदृशः संबंधः	कैसा संबंध हो सकता है?

-: अर्थ :-

मैं चटाई का करता हूँ (बनाने वाला हूँ) इस प्रकार (कर्त्ता, कर्म) संबंध भिन्न-भिन्न दो पदार्थों में होता है जब आत्मा ही ध्यान, ध्येय है, तब संबंध कैसा?

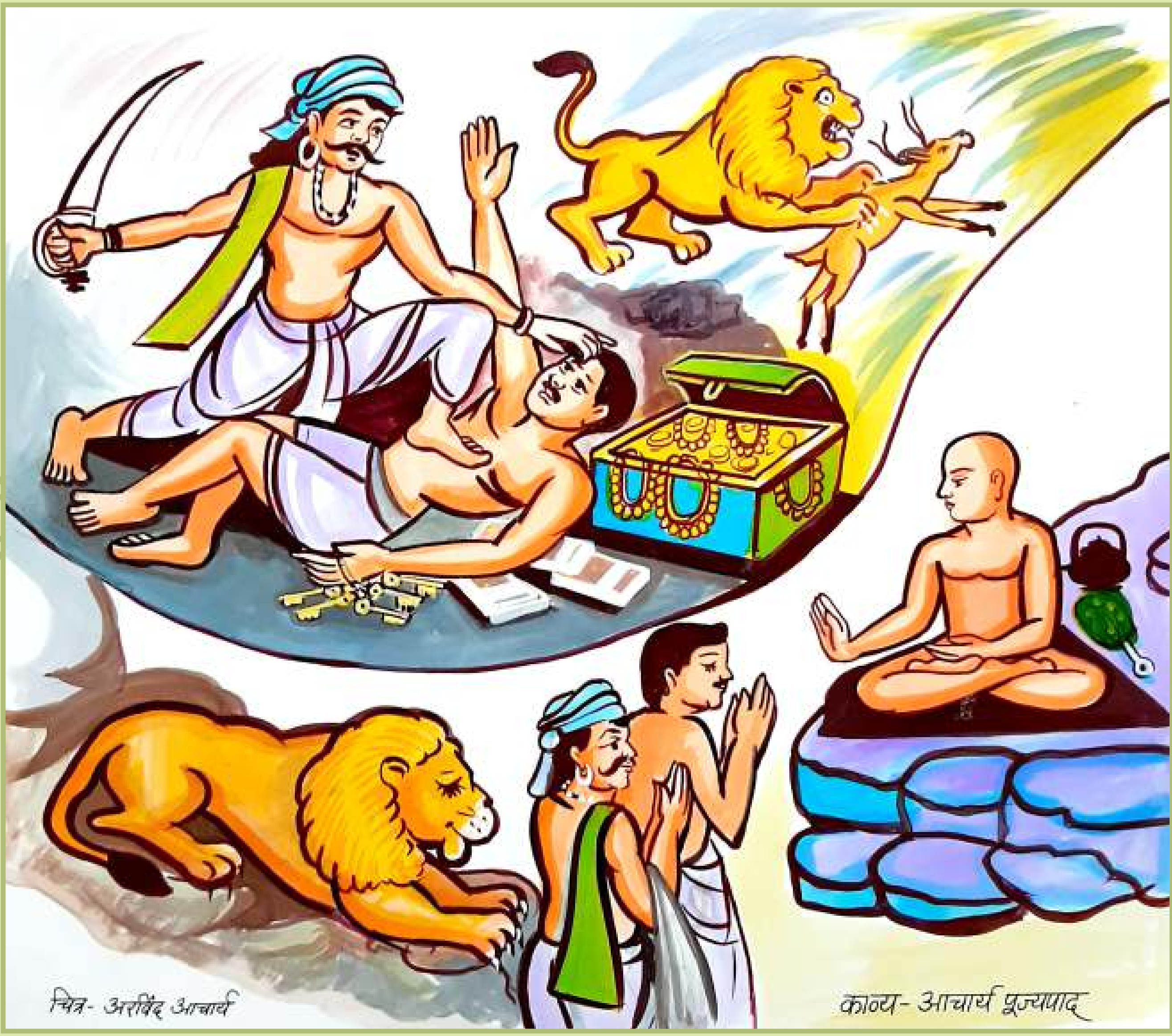
चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

बन्ध और मोक्ष का कारण

बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत्।। 26।।

-: अन्वयार्थ :-

सममः	ममता भाव सहित और
निर्ममः	ममता भाव रहित
जीवः	जीव
क्रमात्	क्रम से (कर्मों से)
बध्यते	बँधता है तथा
मुच्यते	छूटता है
तस्मात्	इस कारण
सर्वप्रयत्नेन	सर्व प्रयत्न से
निर्ममत्वं	निर्ममत्व होने का
विचिन्तयेत्	विशेष रूप से चिन्तवन करें।

-: अर्थ :-

ममकार सहित जीव और ममकार रहित जीव क्रम से (कर्मों से) बँधता है, छूटता है। इसलिए संपूर्ण प्रयत्नों के द्वारा निर्ममत्वपने का चिंतवन (ध्यान) करना चाहिए।

चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

निर्ममता की सिद्धि योग्य विचार

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।। 27।।

-: अन्वयार्थ :-

अहम् एकः	मैं एक हूँ
निर्ममः शुद्धः	ममता रहित शुद्ध हूँ
ज्ञानी	ज्ञानी हूँ तथा
योगीन्द्र गोचरः	योगियों (केवली, श्रुतकेवली) द्वारा जानने योग्य हूँ
सर्वेअपि	सभी
संयोगजा भावा	संयोग से उत्पन्न होने वाले पदार्थ
मत्तः	मुझसे (आत्म स्वभाव से)
सर्वथा बाह्याः	सब तरह से भिन्न हैं।

-: अर्थ :-

मैं एक हूँ, निर्ममत्व हूँ, शुद्ध हूँ, सम्यग्ज्ञानी हूँ, श्रेष्ठ योगियों द्वारा जाना जाता हूँ, संयोग से उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थ मेरे से (आत्मा से) सर्वथा बाहरी (भिन्न) हैं।

चित्र - अरविंद आचार्य
काव्य - आचार्य पूज्यपाद

सम्बन्धों को त्यागने की प्रेरणा

दुःखसंदोहभागित्वं, संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं, मनोवाक्कायकर्मभिः।। 28।।

-: अन्वयार्थ :-

इह	इस संसार में
देहिनाम्	जीवों को
संयोगात्	शरीर, धनादि के संयोग से
दुःखसंदोह	दुःख समूह का
भागित्वं	भागीदार बनना पड़ता है
ततः	इस कारण
एनं सर्वं	इन सभी (शरीर और कर्म के) संयोग को
मनोवाक्कायकर्मभिः	मन, वचन, काय की क्रिया द्वारा
त्यजामि	मैं छोड़ता हूँ।

-: अर्थ :-

यह संसारी प्राणियों को संयोग के कारण दुःखों के समूह का भागीदार बनना पड़ता है इसलिए मैं इन सभी को मन, वचन, काय की क्रिया द्वारा छोड़ता हूँ।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

पौद्‌गलिक परिणति मेरी नहीं

न मे मृत्युः कुतो भीति, र्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्‌गले।। 29।।

-: अन्वयार्थ :-

मे	मेरी
मृत्युः न	मृत्यु नहीं होती (तब)
कुतः भीतिः	डर किसका?
मे	मुझे
व्याधिः न	कोई रोग नहीं होता है (इसलिए)
कुतः व्यथा	दु:ख कहाँ से हो सकता है?
अहम्	मैं
बालः न	बालक नहीं हूँ
वृद्ध न	बूढ़ा नहीं हूँ
युवा न	जवान नहीं होता
एतानि	ये सब बातें (स्थितियाँ)
पुद्‌गले	पौद्‌गलिक शरीर में होती हैं।

-: अर्थ :-

मेरी मृत्यु नहीं है तब मुझे भय किसका? मुझे कोई रोग नहीं हैं तब कष्ट किसका? मैं बालक नहीं हूँ, मैं वृद्ध नहीं हूँ और जवान नहीं हूँ ये सब पुद्‌गल में होते हैं।

खाद
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

ज्ञानी की अनासक्त बुद्धि

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्, मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा।। 30।।

-: अन्वयार्थ :-

सर्वे अपि	सभी
पुद्गलाः	पुद्गल परमाणु (पदार्थ)
मया मोहात्	मैंने मोह के कारण से
मुहुः	बार-बार
भुक्तोज्झिता	भोगकर छोड़ दिये हैं, अतः
अद्य	अब
उच्छिष्टेषु इव	जूठन (वमन) के समान
तेषु	उन पुद्गलों में
मम विज्ञस्य	मुझ बुद्धिमान् की
का स्पृहा	अभिलाषा कैसे हो सकती है?

-: अर्थ :-

सभी पुद्गल पदार्थ मेरे द्वारा मोह से बार-बार भोग कर छोड़ दिए गए हैं (फिर) जूठन के समान उन पुद्गलों में मुझ बुद्धिमान (ज्ञानी) की अब क्या अभिलाषा है? अर्थात् कुछ इच्छा नहीं है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

सभी अपना प्रभाव बढ़ाते हैं

कर्म कर्मंहिताबन्धि, जीवो जीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वाञ्छति।। 31।।

-: अन्वयार्थ :-

कर्म	कर्म
कर्म हिताबन्धि	अपने हित रूप साथी कर्मों को ही बाँधता है तथा
जीवः	आत्मा
जीवहितस्पृहः	अपने आत्मा के हित की इच्छा करता है
स्व स्व	अपने-अपने
प्रभाव भूयस्त्वे	शक्तिशाली प्रभाव के होने पर
को वा स्वार्थं	कौन अपना हित
न वाञ्छति	नहीं चाहता?

-: अर्थ :-

कर्म अपने हित रूप कर्म को बाँधता है, जीव (आत्मा) जीव के हित की इच्छा करता है (क्योंकि) अपने-अपने प्रभाव के होने पर कौन सा व्यक्ति अपना हित नहीं चाहता? अर्थात् सभी अपना हित चाहते हैं।

चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

आत्मोपकारी बनने का उपदेश

परोपकृतिमुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो, दृश्यमानस्य लोकवत्।। 32।।

-: अन्वयार्थ :-

परोपकृतिं	पर (शरीर आदि) के उपकार को
उत्सृज्य	त्याग करके
स्वोपकार	अपने (आत्मा के) उपकार करने में
परःभव	तत्पर हो जा
दृश्यमानस्य	दिखाई देने वाले
लोकवत्	इस जगत् की तरह
अज्ञः	अज्ञानी जीव
परस्य	पर का
उपकुर्वन्	उपकार करता हुआ पाया (देखा) जाता है।

-: अर्थ :-

पर के उपकार करने का त्याग करके अपने उपकार में लीन (तत्पर) हो, क्योंकि दिखाई देने वाले संसार के समान अज्ञानी प्राणी दूसरे का उपकार करता हुआ पाया जाता है।

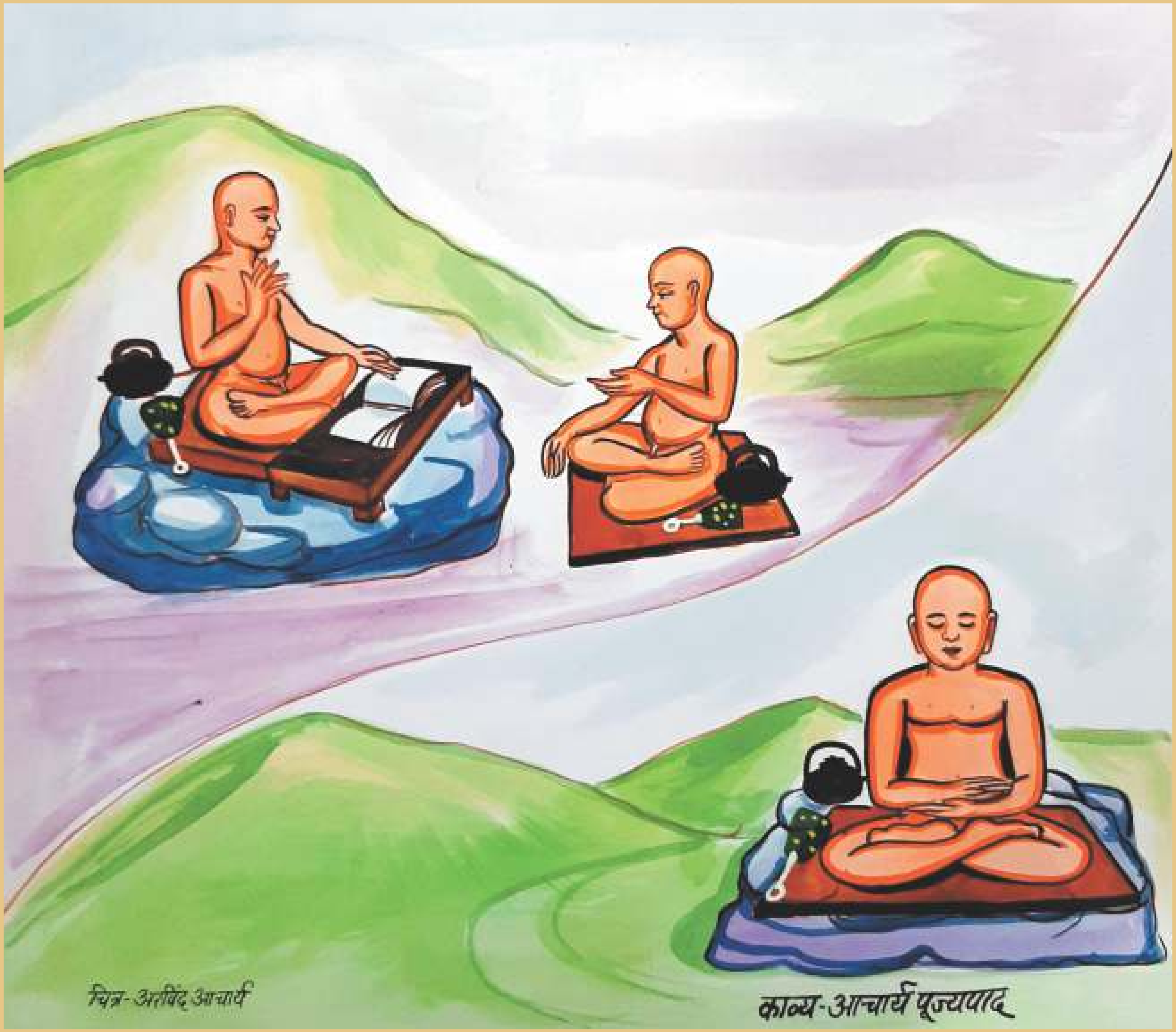
चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

भेद विज्ञान का उपाय और फल

गुरूपदेशा - दभ्यासात्, संवित्तेः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम्।। 33।।

-: अन्वयार्थ :-

यः	जो मनुष्य
गुरूपदेशात्	गुरु के उपदेश से
अभ्यासात्	अभ्यास से तथा
संवित्तेः	आत्म-ज्ञान से
स्वपरान्तरम्	स्व व पर पदार्थों के अन्तर को
जानाति	जानता है अर्थात् अनुभव करता है
स निरन्तरम्	वह सदा
मोक्ष-सौख्यं	मोक्ष के सुख को
जानाति	जानता है अर्थात् अनुभव करता है।

-: अर्थ :-

जो (जीव) गुरु के उपदेश से, अभ्यास से, आत्मज्ञान से अपने और पर पदार्थों के अन्तर को जानता है, वह हमेशा मोक्ष के सुख को जानता है।

काव्य- आचार्य पूज्यपाद
चित्र अरविंद आचार्य

निजात्मा ही गुरु है

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वा, दभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वा, दात्मैव गुरुरात्मनः।। 34।।

-: अन्वयार्थ :-

स्वस्मिन्	अपने आत्म स्वरूप में ही
सत्	प्रशस्त (मोक्ष सुख की)
अभिलाषित्वात्	अभिलाषा करने से
अभीष्ट	अपने प्रिय पदार्थ का
ज्ञापकत्वतः	जानने वाला होने से तथा
स्वयं हित	अपने आप अपने हित में
प्रयोक्तृत्वात्	प्रवृत्ति करने वाला होने से
आत्मा एव	आत्मा ही
आत्मनः गुरुः	अपना गुरु है।

-: अर्थ :-

अपनी आत्मा की श्रेष्ठ (कल्याण की) अभिलाषा होने से अपने प्रिय पदार्थ आत्मा को जानने वाला होने से, अपने आप अपने हित का प्रयोग करने वाला होने से आत्मा हीआत्मा का गुरु है।

-: सारांश :-

जो आत्म हित चाहे, जो आत्म हित जाने, जो आत्म हित करे वह गुरु है।

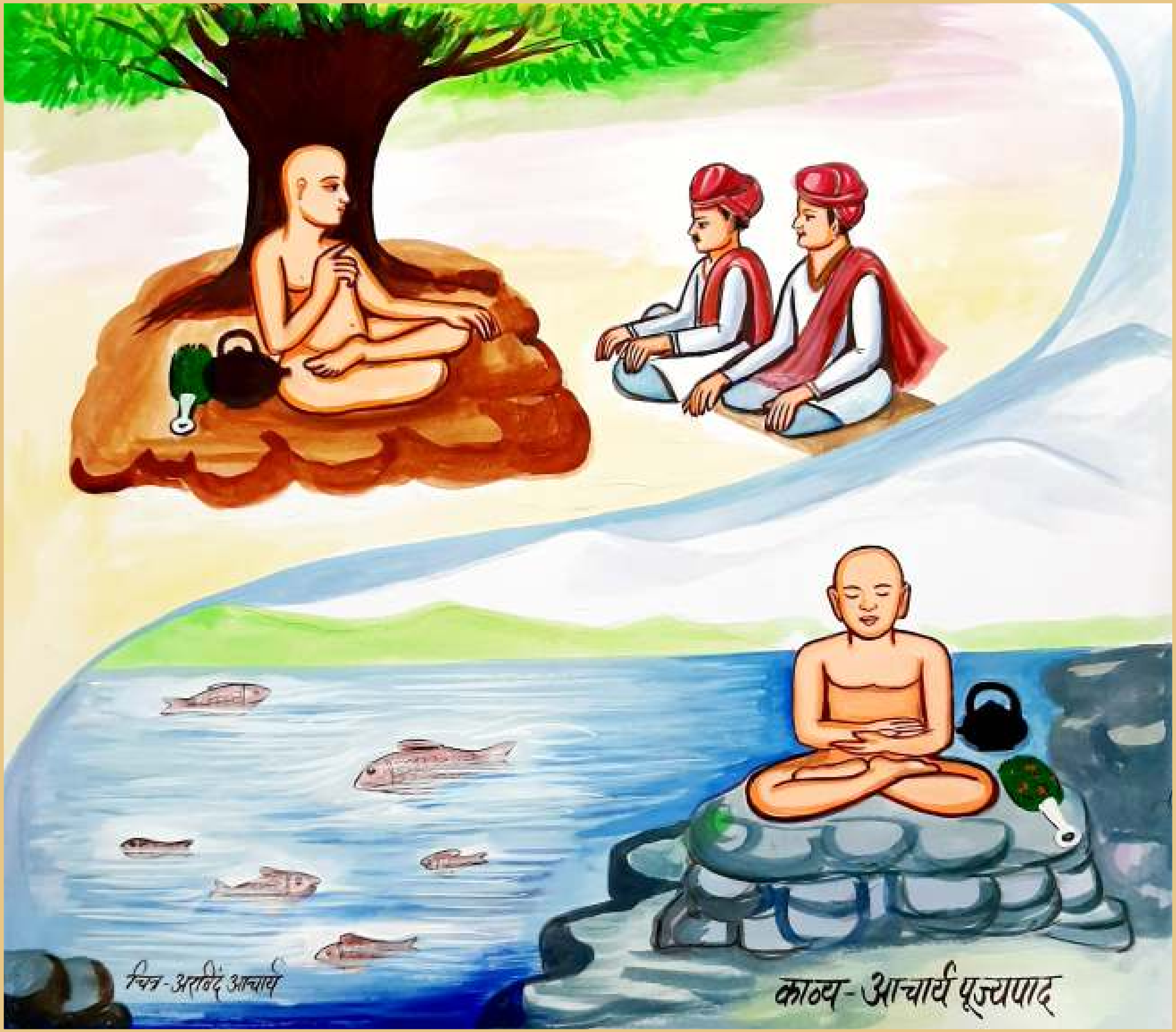
चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

निमित्त सहायक मात्र है

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्।। 35।।

-: अन्वयार्थ :-

अज्ञः	अज्ञानी
विज्ञत्वं	ज्ञान दशा को
न आयाति	प्राप्त नहीं होता है और
विज्ञः	ज्ञानी
अज्ञत्वं	अज्ञानता को
न ऋच्छति	प्राप्त नहीं होता है
अन्यः	अन्य अध्यापक, गुरु आदि
तु	तो (ज्ञान आदि प्राप्ति में)
गतेः	चलने में
धर्मास्तिकायवत्	धर्मास्तिकाय की तरह
निमित्तमात्रम्	केवल सहायक मात्र हैं। यहाँ उपादान की मुख्यता से कथन किया गया है।

-: अर्थ :-

अज्ञानी ज्ञानपने को प्राप्त नहीं होता और ज्ञानी अज्ञानपने को प्राप्त नहीं होता अन्य (गुरु आदि) तो चलने में धर्मास्तिकाय के समान निमित्त मात्र है।

चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

निजात्म चिन्तन कौन कैसे करे?

अभवच्चित्तविक्षेप, एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः।। 36।।

-: अन्वयार्थ :-

चित्त विक्षेपः	जिसके चित्त में क्षोभ अर्थात् राग-द्वेष आदि विकार
अभवत्	नहीं होता है
तत्त्वसंस्थितः	तत्त्व विचार में स्थित है बुद्धि जिसकी
योगी	ऐसा योगी (मुनि)
एकान्ते	निर्जन स्थान में
अभियोगेन	आलस्य त्यागकर (सावधानी से)
निजात्मनः	अपनी आत्मा के
तत्त्वं	स्वरूप चिन्तन का
अभ्यस्येत्	अभ्यास करे।

-: अर्थ :-

चित्त (मन) में क्षोभ न होने पर तप्व विचार में जिसकी बुद्धि अच्छी तरह स्थिर है ऐसा योगी एकान्त में आलस्य त्याग कर अपने आत्म तत्त्व के चिंतवन का अभ्यास करे।

चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

आत्म संवित्ति की पहिचान

यथा यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।। 37।।

-: अन्वयार्थ :-

यथा-यथा	ज्यों-ज्यों
संवित्तौ	अनुभूति में
उत्तमं तत्त्वं	उत्तम तत्त्व (शुद्धात्म स्वरूप)
समायाति	समाविष्ट होता है
तथा-तथा	त्यों-त्यों
सुलभा-अपि	सुलभता से प्राप्त हुए भी
विषयाः	विषय भोग
न रोचन्ते	रुचते नहीं हैं।

-: अर्थ :-

जैसे-जैसे आत्मज्ञान में उत्तम तत्त्व समाविष्ट होता है, वैसे-वैसे सुलभता से प्राप्त होते हुए भी विषय भोग रुचते नहीं है।

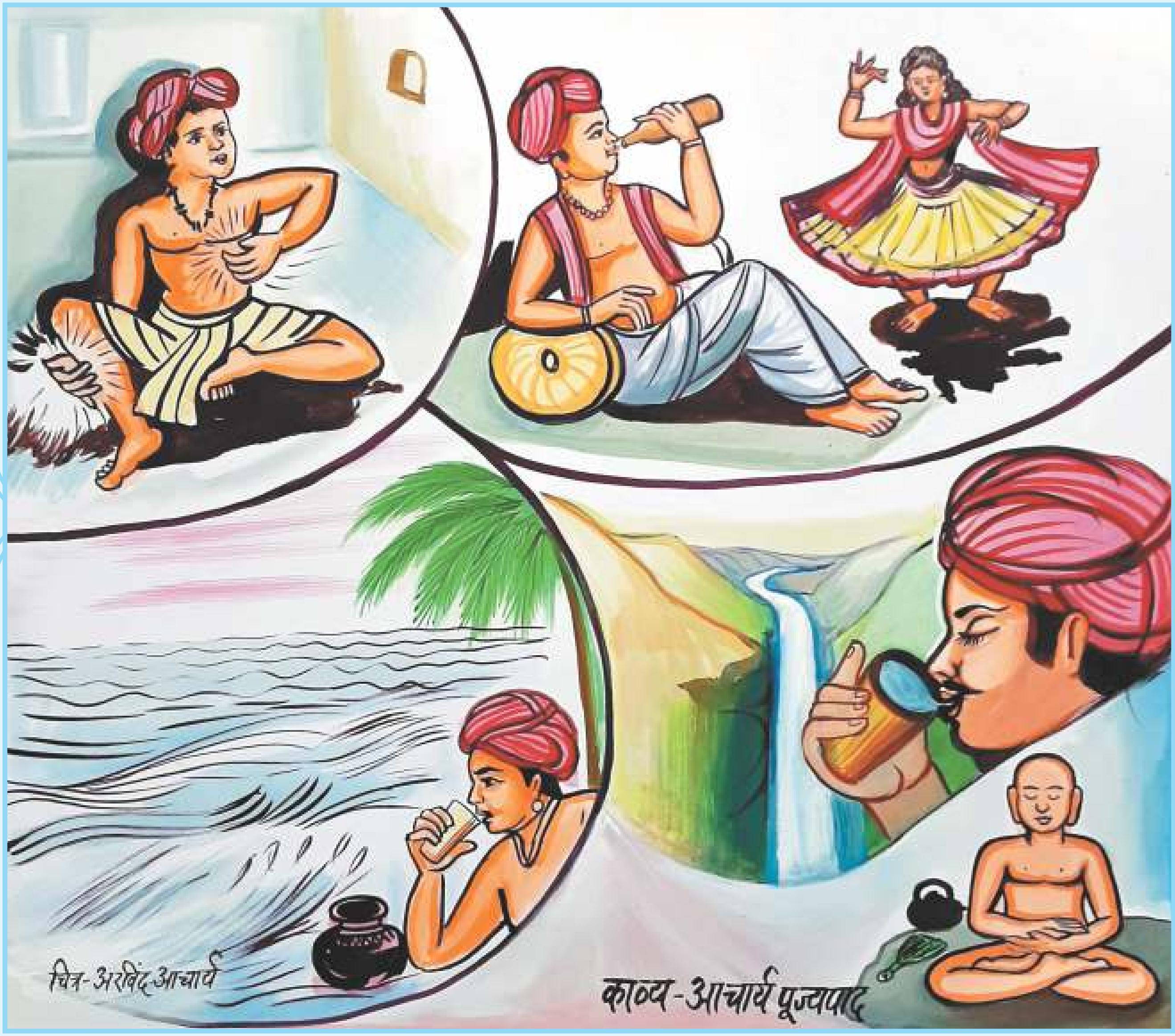
चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

आत्म संवेदन की पहिचान

यथा यथा न रोचन्ते विषया: सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।। 38।।

-: अन्वयार्थ :-

यथा यथा	ज्यों-ज्यों
सुलभा	सुलभ
विषया: अपि	विषय भी
न रोचन्ते	जिसको रुचते नहीं हैं
तथा तथा	त्यों-त्यों
संवित्तौ	अनुभूति में
उत्तमं तत्त्वं	उत्तम तत्त्व (शुद्धात्म स्वरूप का)
समायाति	उसको अनुभव होने लगता है।

-: अर्थ :-

ज्यों-ज्यों सुलभ विषय भी जिसको रुचते नहीं हैं त्यों-त्यों अनुभूति में उत्तम तत्त्व (शुद्धात्म स्वरूप का) उसको अनुभव होने लगता है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

अनुभूति बढ़ने पर विचार परिणति

निशामयति निश्शेष, मिन्द्रजालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते।। 39।।

-: अन्वयार्थ :-

निश्शेषं	जब समस्त
जगत्	संसार
इन्द्रजालोपमं	इन्द्रजाल की तरह काल्पनिक
निशामयति	दिखाई देने लगता है, तब
आत्मलाभाय	आत्म-स्वरूप पाने के लिए
स्पृहयति	तीव्र अभिलाषा होती है, उस समय यदि
अन्यत्र	मन अन्यत्र
गत्वा	जाता है तो
अनुतप्तये	सन्तप्त (पीड़ित) होता है।

-: अर्थ :-

जब सम्पूर्ण संसार इन्द्रजाल की तरह नि:सार दिखाई देता है, तब आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिए अभिलाषा होती है कदाचित् किसी विषय में (अन्यत्र) जाने पर मन संतप्त (व्याकुल) होता है।

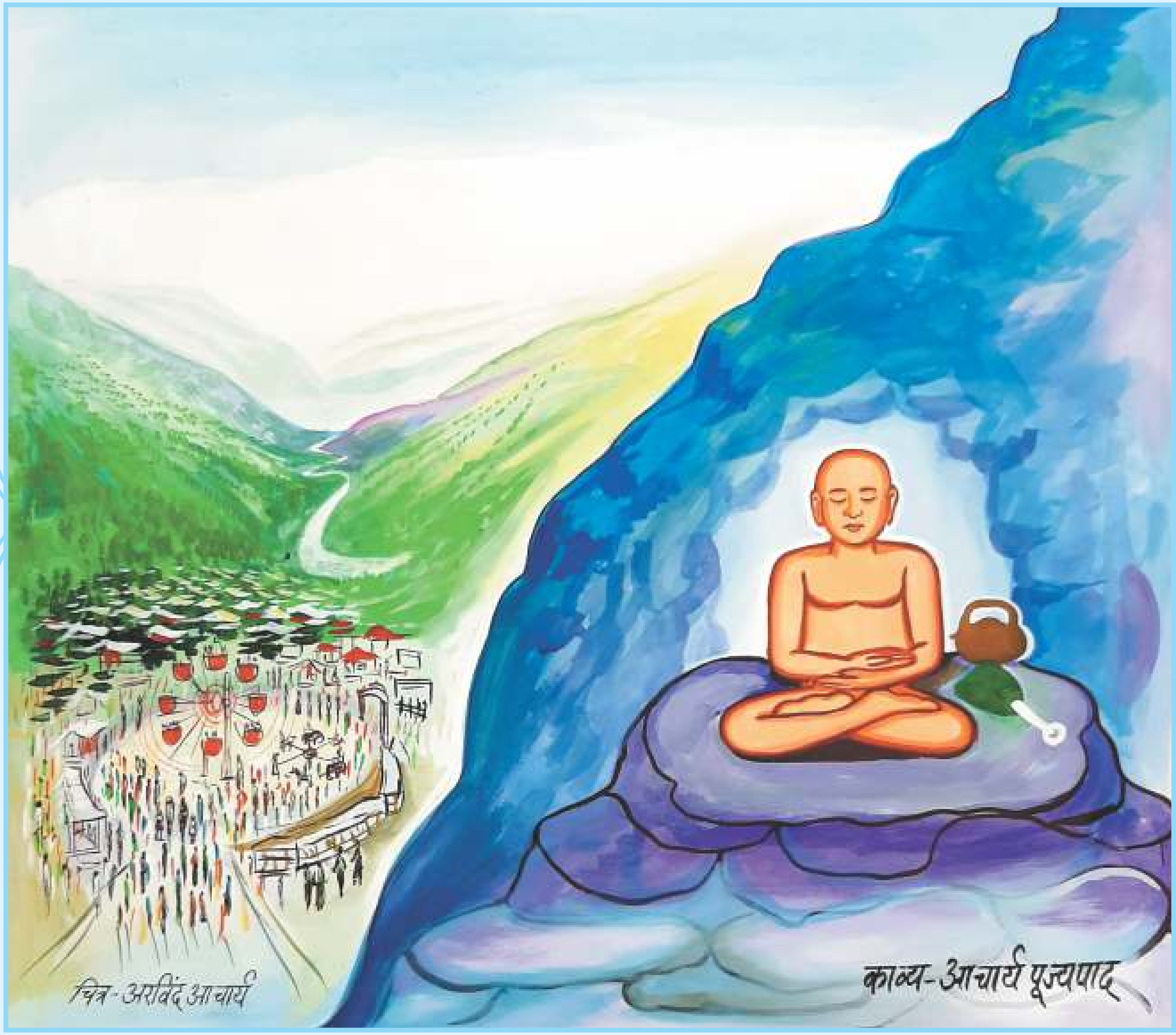
चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

योगी की निर्जन प्रियता

इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः।
निजकार्यवशात्किञ्चि दुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्।। 40।।

-: अन्वयार्थ :-

निर्जनं	निर्जन स्थान
जनितादरः	जिसे अच्छा प्रतीत होता है ऐसा अनुभवी पुरुष
एकान्त	एकान्त में
संवासं इच्छति	रहना चाहता है
निजकार्यवशात्	अपने किसी कार्यवश उसे यदि
किञ्चित् उक्त्वा	कुछ कहना भी हो तो वह कह करके
द्रुतम्	शीघ्र ही उसे
विस्मरति	भूल जाता है।

-: अर्थ :-

निर्जन वन को पाकर जिनका मन खुश है और जो एकांत में रहने की इच्छा करते हैं (ऐसे महान पुरुष) अपने कार्य के वश थोड़ा कुछ कहकर शीघ्र ही भूल जाते हैं।

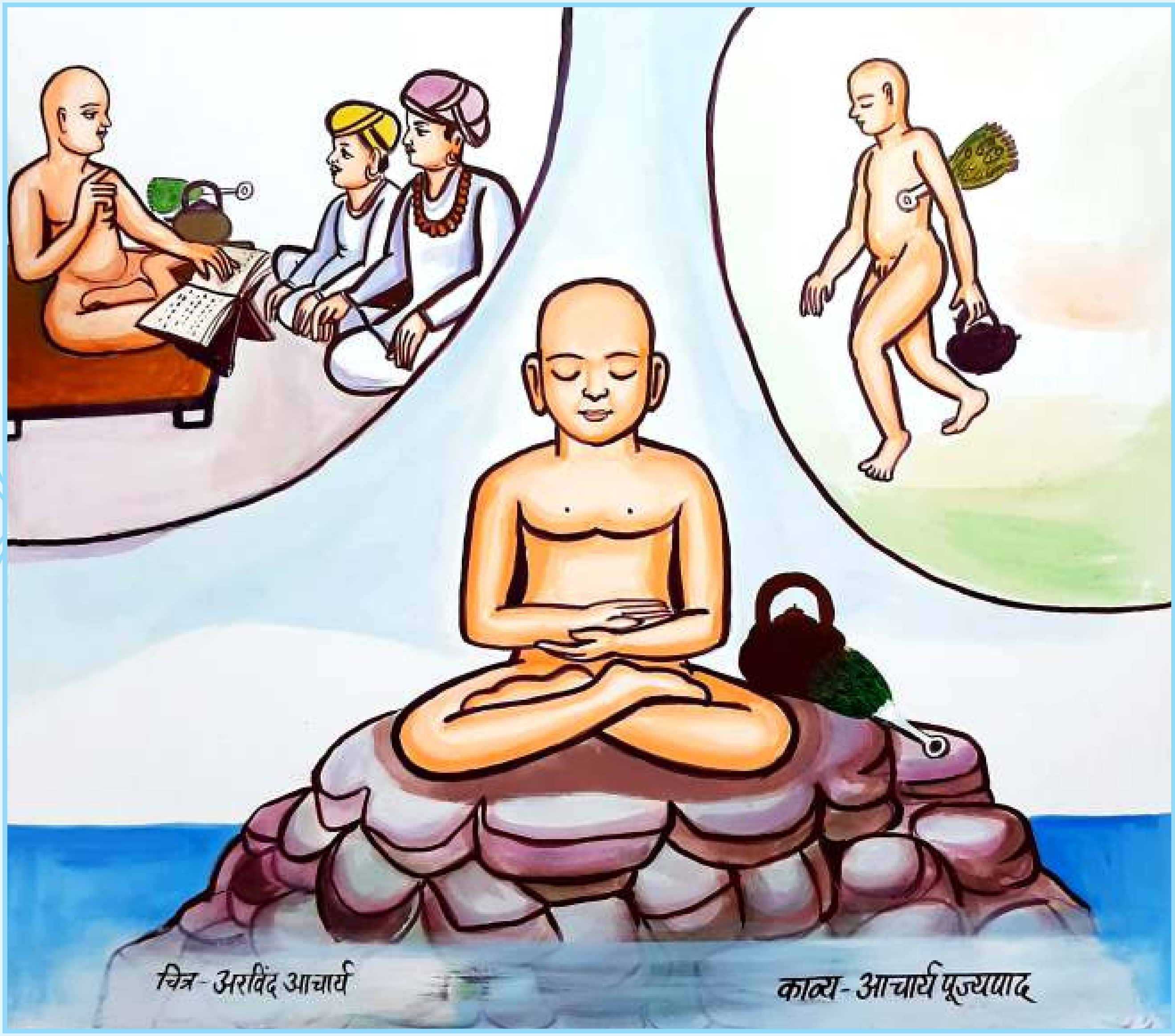
चित्र - अरविंद आचार्य
काव्य - आचार्य पूज्यपाद

स्वरूप निष्ठ योगी की विशेषता

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति।। 41।।

-: अन्वयार्थ :-

स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु	आत्म तत्त्व में स्थिर रहने वाला तो
ब्रुवन् अपि	बोलता हुआ भी
न ब्रूते	नहीं बोलता है
गच्छन् अपि	चलता हुआ भी
न गच्छति	नहीं चलता है और
पश्यन् अपि	देखता हुआ भी
न पश्यति	नहीं देखता है।

-: अर्थ :-

निश्चय से आत्म तत्त्व में स्थिर रहने वाला तो बोलता हुआ भी नहीं बोलता, चलता हुआ भी नहीं चलता, देखता हुआ भी नहीं देखता है।

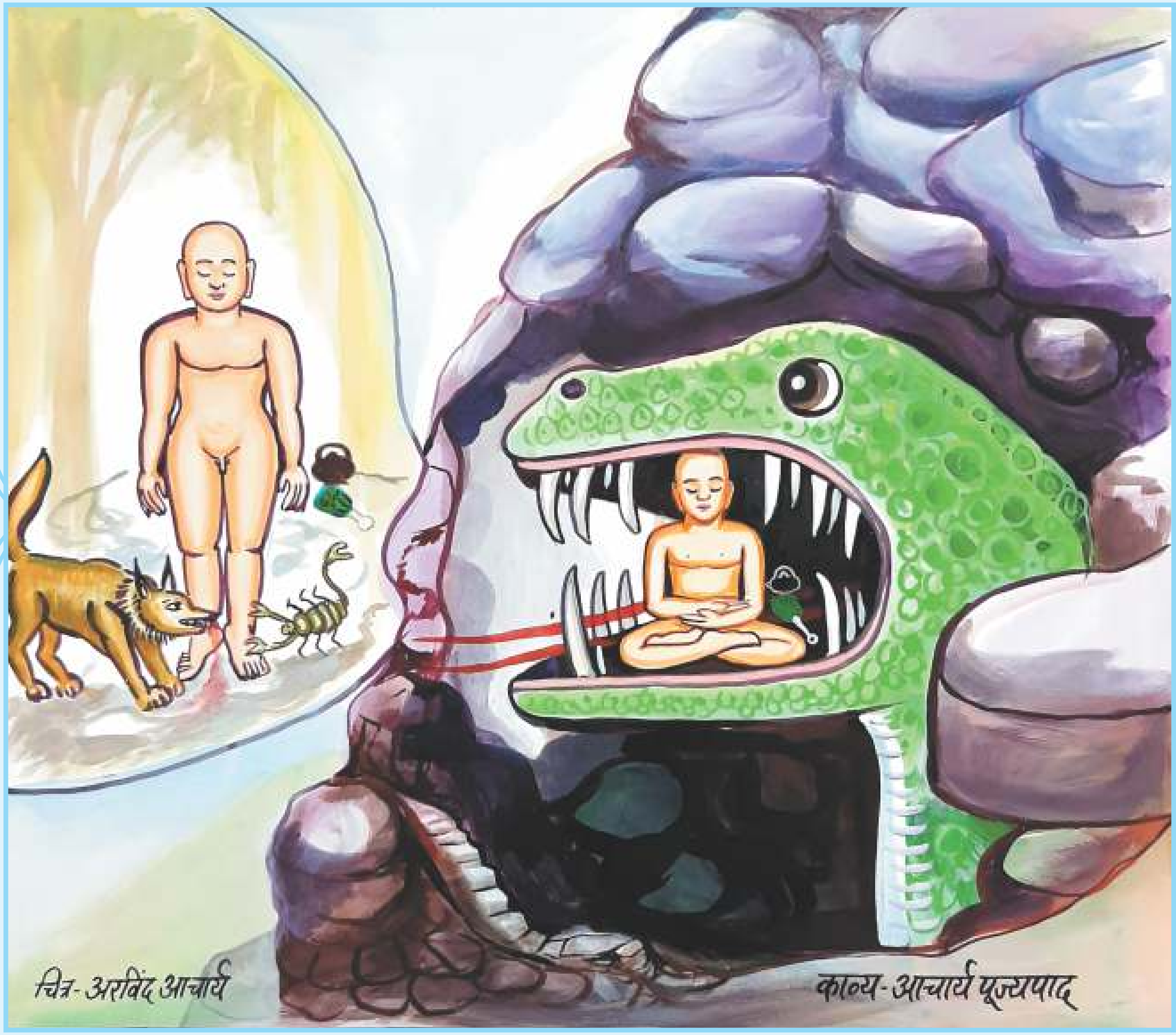
चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

योगी की निर्विकल्प दशा

किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति, योगी योगपरायणः।। 42।।

-: अन्वयार्थ :-

योग परायणः	आत्म ध्यान में लगा हुआ
योगी	योगी साधक
इदम् किम्	यह क्या है?
कीदृशं	कैसा है?
कस्य	किसका है?
कस्मात्	किस कारण से है?
च	और
क्व	कहाँ है?
इति	इस तरह
अविशेषयन्	विशेष विचार न करता हुआ
स्वदेहं अपि	अपने शरीर को भी
न अवैति	नहीं जानता है।

-: अर्थ :-

आत्म ध्यान (योग) में लीन साधु यह क्या है? कैसा है? किसका है? किस कारण से है? कहाँ है? इस तरह विचार न करता हुआ अपने शरीर को भी नहीं जानता है। निर्विकल्प होने के यही उपाय हैं।

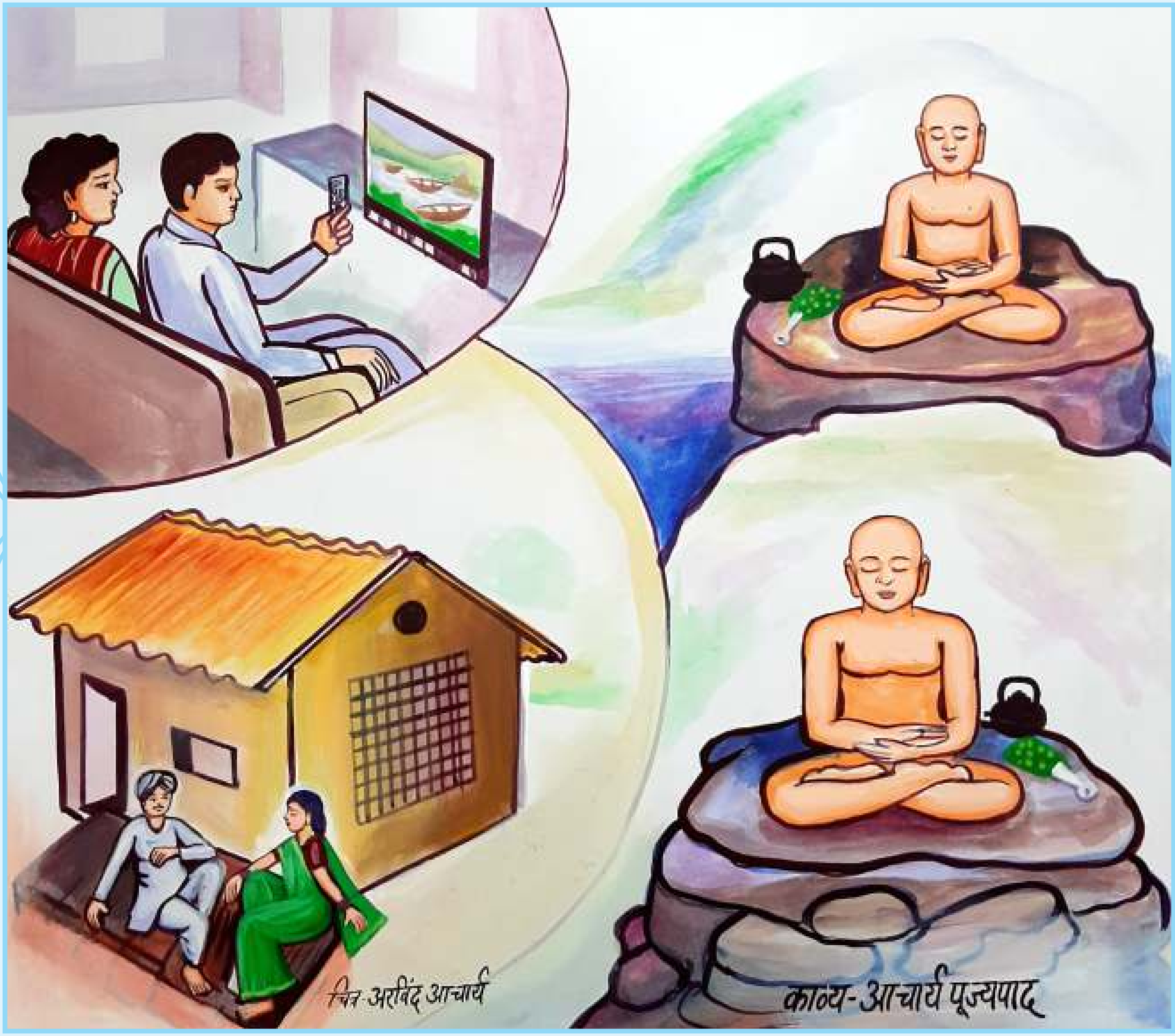
चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

जो जहाँ रह जाता, वह वहाँ रम जाता

यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मा, दन्यत्र स न गच्छति।। 43।।

-: अन्वयार्थ :-

यः	जो जीव
यत्र	जहाँ पर
निवसन् आस्ते	रहता है
स तत्र	वह वहाँ (उस स्थान पर)
रतिम् कुरुते	प्रीति करता है और
यः यत्र	जो जीव जहाँ
रमते	रम जाता है
स	वह
तस्मात्	उस स्थान से
अन्यत्र	अन्यत्र कहीं
न गच्छति	नहीं जाता। अतः आत्म स्वरूप में रमने वाले अन्यत्र उपयोग को नहीं लगाते।

-: अर्थ :-

जो जीव जहाँ पर निवास करता है, वह उस स्थान पर प्रीति करता है और जो जहाँ रम जाता है इसलिए वह उस स्थान से अन्यत्र नहीं जाता है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

साम्यभावी योगी कर्मों से छूटता है

अगच्छंस्तद् विशेषाणा, मनभिज्ञश्च जायते।
अज्ञाततद्विशेषस्तु, बध्यते न विमुच्यते।। 44।।

-: अन्वयार्थ :-

तद्विशेषाणाम्	उन (शरीर आदि पर पदार्थों के) विशेषणों (विशेषताओं) को
अगच्छन्	नहीं जानता हुआ
अनभिज्ञः	अजान
जायते	बन जाता है
च	और
तद्विशेषः	उन विशेषताओं पर
अज्ञात	ध्यान न देने वाला
तु	तो
बध्यते न	कर्म से नहीं बँधता
विमुच्यते	परन्तु विशेष रूप से छूट जाता है।

-: अर्थ :-

योगी उन पदार्थों के विशेषणों को न जानता हुआ अनभिज्ञ हो जाता है और उन विशेषताओं को न समझने वाला तो (कर्मों से) बंधता नहीं है, बल्कि छूट जाता है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

सुख दुःख के आधार?

परः परस्ततो दुःख, मात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्, तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।। 45।।

-: अन्वयार्थ :-

परः	अन्य पदार्थ (आत्मा से)
परः	अन्य हैं, अतः
ततः	उस अन्य पदार्थ से
दुःखम्	दुःख होता है, और
आत्मा	आत्मा अपना
आत्मा एव	आत्मा ही है, अतः
ततः	उस (आत्मा) से
सुखम्	सुख होता है
अतएव	इसी कारण
महात्मानः	महान् पुरुषों ने
तन्निमित्तं	उसकी प्राप्ति के निमित्त
कृतः उद्यमाः	उद्यम किया था।

-: अर्थ :-

पर पदार्थ आत्मा से अन्य है इसलिए उनसे दुःख होता है और आत्मा ही अपना है इसलिए उससे सुख होता है, इस कारण से महान पुरुषों ने उस आत्मा की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया था।

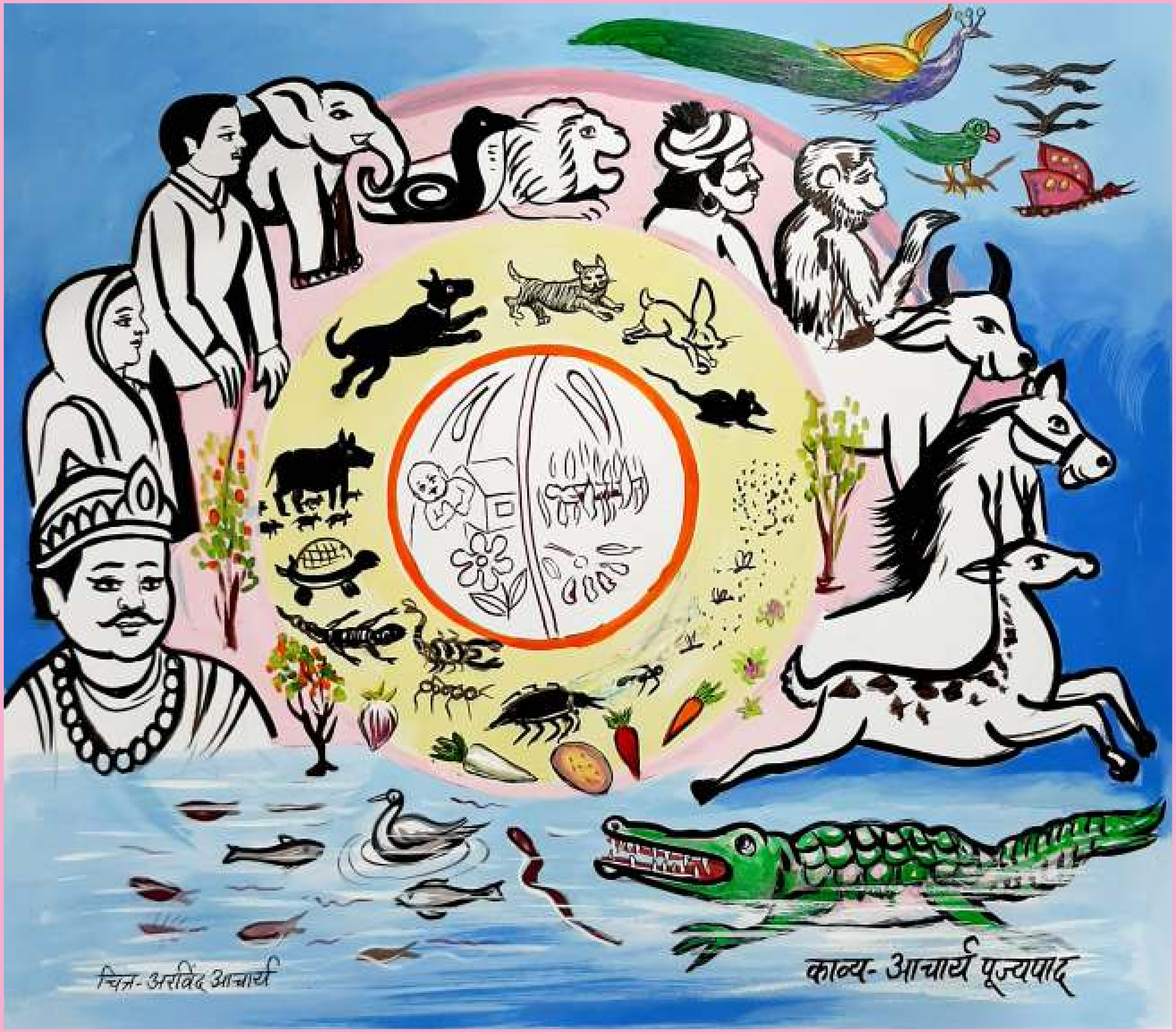
चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

पर के अनुराग का फल

अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं, योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोः सामीप्यं, चतुर्गतिषु मुञ्चति।। 46।।

-: अन्वयार्थ :-

यः	जो
अविद्वान्	मूर्ख बहिरात्मा
पुद्गल द्रव्यम	पुद्गल द्रव्य का
अभिनन्दति	आदर करता है
तस्य जन्तोः	उस (बहिरात्मा) प्राणी का
तत्	वह (शरीर आदि पुद्गल द्रव्य)
जातु	कभी भी
चतुःगतिषु	चारों गतियों में
सामीप्यं न मुञ्चति	साथ नहीं छोड़ता।

-: अर्थ :-

जो मूर्ख (बहिरात्मा) पुद्गल द्रव्य का अभिनंदन (श्रद्धान) करता है उस प्राणी का वह (शरीर आदि) पुद्गल द्रव्य कभी चारों गतियों में साथ नहीं छोड़ता है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

स्वरूप निष्ठता

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः, कश्चिद्योगेन योगिनः।। 47।।

-: अन्वयार्थ :-

व्यवहार	व्यवहार चारित्र से
बहिःस्थितेः	बाहर ठहरे हुए
आत्मानुष्ठान	आत्म-ध्यान में
निष्ठस्य	लवलीन
योगिनः	मुनि के
योगेन	आत्मध्यान के द्वारा
कश्चित्	कोई
परमानन्दः	अपूर्व परम आनन्द
जायते	उत्पन्न होता है।

-: अर्थ :-

व्यवहार चारित्र से बाहर ठहरे हुए और आत्म ध्यान में लवलीन मुनि के योग (आत्मध्यान) के द्वारा कोई अपूर्व आनंद उत्पन्न होता है।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

आनंद का कार्य

आनन्दो निर्दहत्युद्धं, कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी, बहिर्दु:खेष्वचेतन:।। 48।।

-: अन्वयार्थ :-

आनन्द:	आत्मध्यान का आनंद
अनारतम्	निरन्तर
उद्धं	बहुत से
कर्मेन्धनम्	कर्म-रूपी ईधन को
निर्दहति	जलाता है
च	तथा
बहि: दु:खेषु-अचेतन:	बाहरी (परीषह, उपसर्गादिक) दु:खों से अनभिज्ञ
असौ योगी	वह आत्मध्यानी योगी
खिद्यते न	खेद खिन्न (दु:खी) नहीं होता है।

-: अर्थ :-

आत्म ध्यान का आनंद निरंतर बहुत से कर्म-रूपी ईंधन को जलाता है तथा बाहरी (परीषह) आदि दु:खों से अनभिज्ञ वह (आत्म ध्यानी) साधु खेद खिन्न नहीं होता।

चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

मुमुक्षु क्या करे?

अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।। 49।।

-: अन्वयार्थ :-

अविद्याभिदुरं	अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करने वाली
परं ज्योतिः	आत्मा की उत्कृष्ट ज्योति
महत् ज्ञानमय	महान् ज्ञान रूप है
मुमुक्षुभिः	मोक्ष अभिलाषी पुरुषों को
तत् प्रष्टव्यं	उसी के विषय में ज्ञानियों से पूछना चाहिए
तत् एष्टव्यं	उसी की वांछा करनी चाहिए
तत् द्रष्टव्यं	उसी का दर्शन अनुभव करना चाहिए।

-: अर्थ :-

अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट करने वाले आत्मा की उत्कृष्ट ज्योति महान ज्ञान रूप है। मोक्षाभिलाषी पुरुषों के लिए वही (उसी के विषय में) पूछना चाहिए, उसी को पाने का प्रयत्न करना चाहिए उसी का दर्शन करना चाहिए।

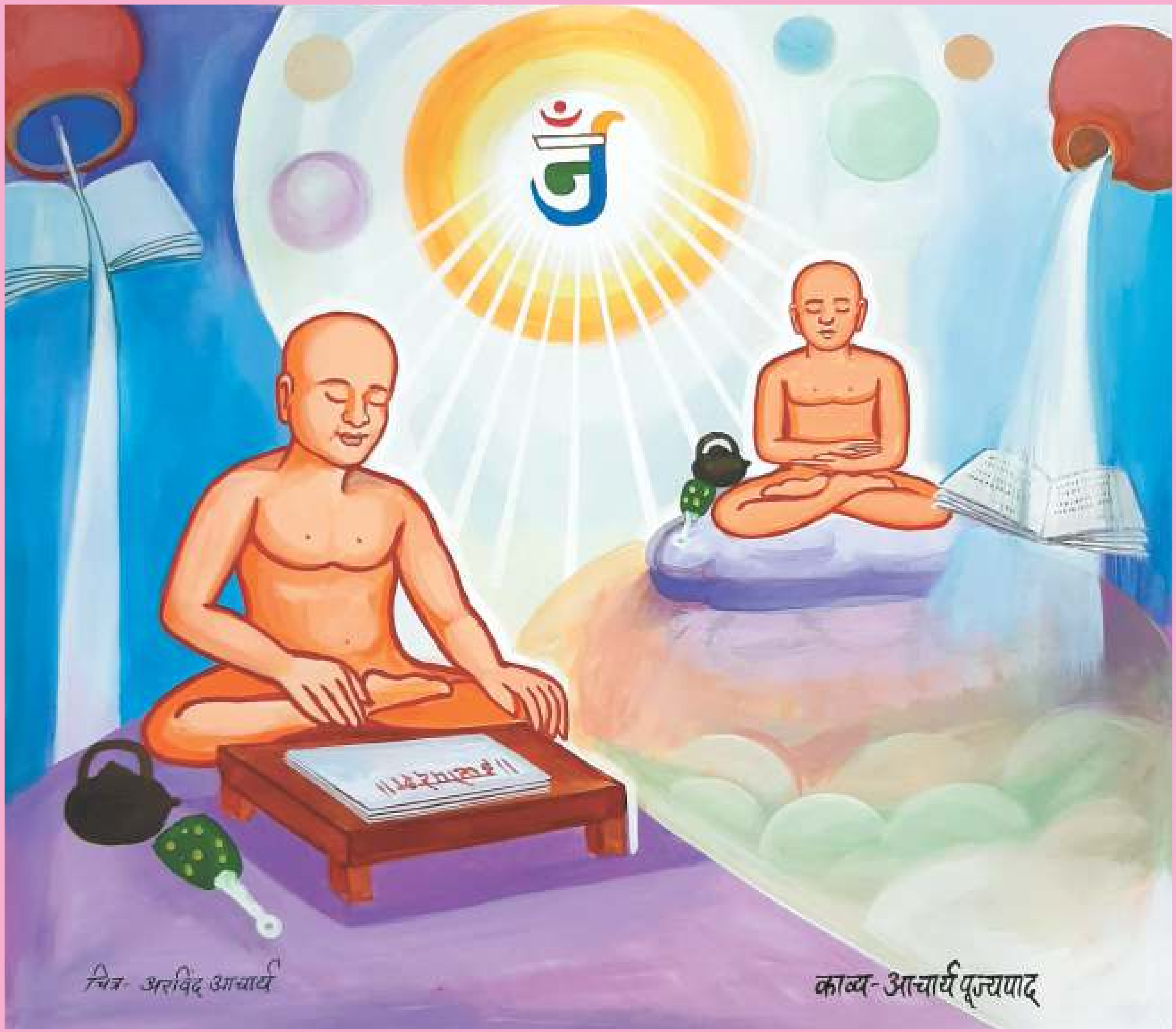
चित्र- अरविंद आचार्य
काव्य- आचार्य पूज्यपाद

तत्त्व का सार

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य, इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किञ्चित्, सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः।। 50।।

-: अन्वयार्थ :-

जीवः अन्यः	जीव शरीर आदि से भिन्न है
च	और
पुद्गलः अन्यः	पुद्गल जीव से भिन्न है
इति	इस प्रकार
असौ	यह
तत्त्वसंग्रहः	तत्त्व का सार है, इसके अलावा
यत्	जो
अन्यत् किञ्चित्	कुछ अन्य बातें इस विषय में
उच्यते	आचार्यों द्वारा कही जाती हैं
सः	वह
तस्य एव विस्तरः	उसका ही विस्तार
अस्तु	है।

-: अर्थ :-

जीव अन्य है और पुद्गल अन्य है इस प्रकार यह तत्त्व का सार (संग्रह) है इसके अलावा जो कुछ भी अन्य कहा जाता है वह सब उसका ही विस्तार है।

॥ इष्टोपदेश ॥
चित्र-अरविंद आचार्य
काव्य-आचार्य पूज्यपाद

इष्टोपदेश शास्त्र अध्ययन का फल

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्, मानापमानसमतां स्वमताद् वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा, मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः।। 51।।

-: अन्वयार्थ :-

इति	इस प्रकार
धीमान् भव्यः	बुद्धिमान भव्य पुरुष
इष्टोपदेशं	इष्टोपदेश ग्रन्थ को
सम्यक् अधीत्य	अच्छी तरह अध्ययन करके
स्वमतात्	अपने आत्मज्ञान से
मानापमान	सम्मान और अपमान में
समतां	समता भाव के
वितन्य	विस्तार को धारण करके
मुक्त आग्रहः	आग्रह को त्यागता हुआ
सजने	गाँव आदि में
वा	अथवा
वने	निर्जन वन में
विनिवसन्	निवास करता हुआ
निरुपमां	अनुपम
मुक्तिश्रियम्	मुक्ति रूपी लक्ष्मी को
उपयाति	प्राप्त करता है।

-: अर्थ :-

बुद्धिमान भव्य पुरुष इस प्रकार इष्टोपदेश ग्रंथ को अच्छी तरही से पढ़कर के अपने आत्मज्ञान से मान- अपमान मैं समता भाव को फैलाकर आग्रह को त्यागता हुआ गाँव आदि में अथवा वन में निवास करता हुआ उपमा रहित (अनुपम) मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

चेतन कृतियाँ

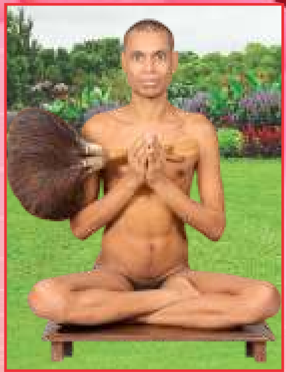

पूज्य मुनि 108
श्री विभास्वरसागर जी
गुरू विरागसागर जी

पूज्य मुनि 108
श्री आचरणसागर जी

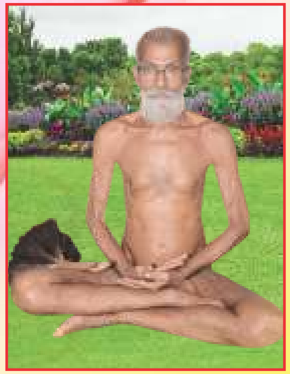

पूज्य मुनि 108
श्री अध्ययनसागर जी

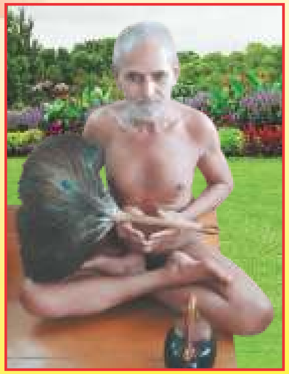

पूज्य मुनि 108
श्री आवश्यकसागर जी

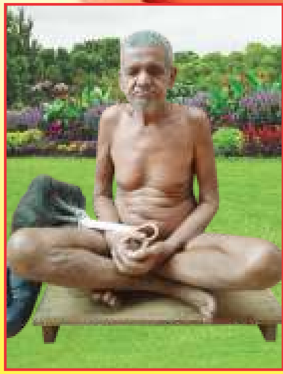

पूज्य मुनि 108
श्री अध्यापनसागर जी

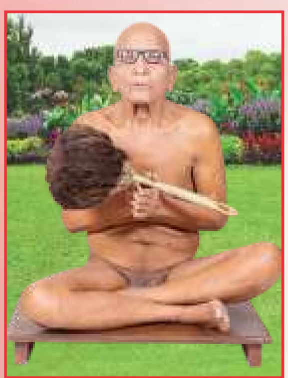

पूज्य मुनि 108
श्री अरिहन्तसागर जी

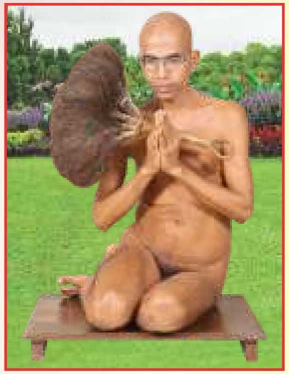

पूज्य मुनि 108
श्री आचारसागर जी

पूज्य मुनि 108
श्री शुद्धात्मसागर जी

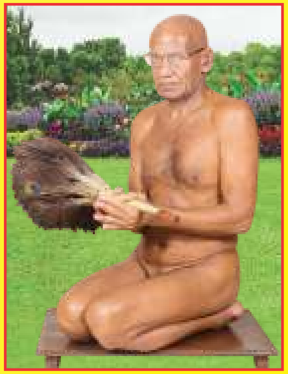

पूज्य मुनि 108
श्री सिद्धात्मसागर जी

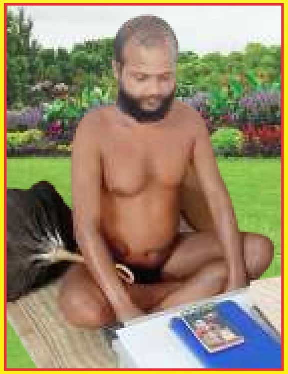

पूज्य मुनि 108
श्री शुद्धसागर जी

पूज्य आर्यिका 105
अर्हम्श्री माताजी

पूज्य आर्यिका 105
ओम्श्री माताजी

पूज्य आर्यिका 105
समितिश्री माताजी

पूज्य आर्यिका 105
संस्कृतश्री माताजी

पूज्य आर्यिका 105
संस्कृतिश्री माताजी

पूज्य 105
क्षुल्लिका ह्रींश्री माता जी

पूज्य 105
क्षुल्लिका आराधनाश्री माता जी

पूज्य 105
क्षुल्लिका सिद्धश्री माता जी

पूज्य 105
क्षुल्लिका संस्तुतिश्री माता जी

बाल ब्र.
अभिनन्दन भैयाजी

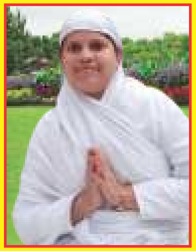

बाल ब्र. प्रियंका दीदी

बाल ब्र. रूचि दीदी

बाल ब्र. मंजू दीदी

बाल ब्र. तनु दीदी

बाल ब्र. राखी दीदी

बाल ब्र. सुरभि दीदी

बाल ब्र. राजश्री दीदी

बाल ब्र.
मंजू दीदी की
दीक्षा उपलक्ष्य में
प्रकाशित
21.02.2020
उदयपुर, राजस्थान

गुरुवर से पिच्छिका ग्रहण करते हुए ओम्श्री माताजी

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य डॉ. विभवसागर मुनिराज

पूर्व नाम	पं. अशोक कुमार जी जैन ''शास्त्री''
जन्म स्थान	किशनपुरा (सागर)
जन्मतिथि	कार्तिक कृष्ण अमावस्या 2033, तद्नुकूल 23 अक्टूबर, 1976
पिताश्री	श्रावक रत्न श्री लखमीचन्द्र जी जैन
माताश्री	श्राविका-रत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन (समाधिस्थ आर्यिका प्राज्ञाश्री माताजी)
शिक्षा	इण्टर संस्कृत शास्त्री प्रथम वर्ष
धार्मिक शिक्षा	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान	श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि. जैन महाविद्यालय, मोराजी, सागर (म.प्र.)
वैराग्य	9 अक्टूबर, 1994 को ब्रह्मचर्य व्रत लिया
क्षुल्लक दीक्षा	28 जनवरी, 1995 मंगलागिरी, सागर (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	23 फरवरी, 1996, देवेन्द्र नगर जिला-पन्ना (म.प्र.)
मुनि दीक्षा	14 दिसम्बर, 1998, अतिशय क्षेत्र वरासौ, भिण्ड (म.प्र.)
दीक्षा गुरु	गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज
आचार्य पद	31 मार्च, 2007, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष	जैन आगमरूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञा श्रमण की प्रवचन शैली जन-जन हृदयग्राह्य है।
रूचि	पठन-पाठन, काव्य, सृजन, चिंतन, मनन
कृतियाँ	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 75 कृतियों की सर्जना की गई है जो इसी पुस्तक में सूचीबद्ध है।
अलंकरण	''सारस्वत-श्रमण'', ''सारस्वत कवि'', ''शास्त्र कवि'' ''नये चक्रवर्ती'', ''संस्कृताचार्य'', विद्यावाचस्पति (डॉक्टर)''